।। श्रीहरि।।

।। श्रीमद् भगवद् गीता ।।

अध्याय –एक

।। धृतराष्ट्र बोले।।

धर्म भूमि कुरूक्षेत्र रण का, मुझको हाल सुनाओ।
क्या कर रहे हैं कौरव–पाण्डव, संजय मुझे बताओ।। 1।।

संजय कहें पाँडवों की, व्यूह रचना को देख दुर्योधन।
द्रोणाचार्य के पास जाकर के , बोला ये उनसे वचन।। 2।।

हे आचार्य आपका शिष्य, द्रुपद का है जो लाल।
सेना भारी लेकर आया, और रचा है व्यूह जाल।। 3।।

भीम अर्जुन द्रुपद विराट से, महारथी हैं साथ।
हैं अनेकों बली धुरधंर, लिए धनुष निज हाथ।। 4।।

धृष्टकेतु चेकितान पुरूजित, काशिराज से हैं वीर।
कुन्तीभोज और शैव्य जैसे, महाबली रणधीर।। 5।।

युद्धामन्यु व उतमौजा, हैं अभिमन्यु से शूर।
पाँचों पुत्र द्रोपदी के हैं, जो कि बली भरपूर।। 6।।

अपने पक्ष की भी प्रधानता, हे गुरूदेव लो जान।
जानकारी देता योद्धाओं की, जो हैं बड़े महान।। 7।।

आप स्वयं, पितामह भीष्म, कर्ण से योद्धा यहाँ।
कृपाचार्य अश्वस्थामा, विकर्ण और भूरिश्रवां।। 8।।

वीर बहुत हैं जो मेरे लिए, तज सकते हैं प्राण।
शूरवीर शस्त्रों से सुसज्जित, रखते तो युद्ध का ज्ञान।। 9।।

भीष्म पितामह द्वारा रक्षित, सेना हमारी अजेय।
भीम की सेना को जो पल में, दे सकती है पराजय।। 10।।

मोर्चे पर जो भी योद्धा हैं, कर दो उन्हें इशारा।
भीष्मपितामह की रक्षा है, पहला कर्म तुम्हारा।। 11।।

शंखनाद किया भीष्म ने , सिंह दहाड़ समान।
सुनके जिसे दुर्योधन के , हृदय हुआ हर्ष महान।।12।।

शंख नगाड़े बिगुल और, नरसिंह बाज उठे।
एक साथ इनके बजने से , भयंकर नाद हुए।।13।।

सफेद घोड़ों से युक्त रथ पे, कृष्णार्जुन थे सवार।
नाँद किये अलौकिक शंखों से, वो भी तभी अपार।।14।।

पाँचजन्य कृष्णा ने बजाया, अर्जुन ने देवदत्त।
पौण्ड्र नामक शंख बजाया, भीम ने भी उसी वक्त।।15।।

अनंत विजय शंख गूँजा, राजा युधिष्ठिर का।
सुघोष और मणिपुष्पक, बाजा नकुल और सहदेव का।।16।।

काशीराज महारथी शिखण्डी, धृष्टधुम्न ने की शंखध्वनि।
राजा द्रुपद, द्रोपदी पुत्रों ने भी, की है अपनी–अपनी।।17।।

सुभद्रा पुत्र अभिमन्यु ने भी, अपना शंख बजाया।
हैं सभी तैयार युद्ध को, दुश्मनों को दरशाया।।18।।

सुनकर भयंकर शंख ध्वनि को, दहली कौरव सेना।
चहुँ दिशाओं में है कोलाहल, उससे कौन डरेना।।19।।

हे राजन् अब सुनो हो गया, रथ पे पार्थ सवार।
देख के गुरू मित्र सम्बन्धी, बोला हे कृष्ण मुरार।।20।।

रथ को ले चलो युद्धभूमि के, बिल्कुल बीचों–बीच।
उन वीरों को देख लूँ लड़ने, आए हैं जो जगदीश।।21।।

जान ना लूँ जब तक कि किस–किस से होगी तकरार।
रथ को हटाना ना वहाँ से, हे मेरे त्रिपुरार।।22।।

कौन–कौन आए हैं रण में, देखूँ मैं बलधारी।
धृतराष्ट्र के कुपुत्र दुर्योधन पे हैं जो बलिहारी।।23।।

सेनाओं के बीच ले गए, रथ को द्वारकानाथ।
जब अर्जुन ने युद्धजनों को, देखने की कही बात।।24।।

रोक के रथ बोले माधव, योद्धा यहाँ हैं महा।
देखलो–भाललो हे अर्जुन, कृष्ण ने उससे कहा।। 25।।

देखा जब अर्जुन ने अपने, रिस्ते–नातेदारों को।
गुरू पितामह, मामा, भाई, पुत्र, पौत्र और यारों को ।।26।।

भर आई मन में करूणा तब, कुन्ती पुत्र अर्जुन के।
तब वह भगवन से बोला, सुनो विचार मेरे मन के।।27।।

हे कृष्णा अपनों को देख, काँप रहे मेरे अंग।
मुख भी सूख रहा है मेरा, सोच के स्वजनों से जंग।।28।।

खड़ा नहीं रह पाऊँगा मैं, सिर चकराए है मेरा।
भूल गया हूँ कृष्ण स्वयं को, घोर अमंगल ने घेरा।।29।।

रोम–रोम में सिंहरन व्यापी, जलने लगी है मेरी त्वचा।
गाण्डीव हाथों से सरके, दम नहीं तन में है बचा।।30।।

दिखते सभी लक्षण विपरीत, कैसे बच पाऊँगा।
अपनों को ही मार के माधव, क्या मैं भला पाऊँगा।।31।।

हे गोविन्द तुम्हीं बतलाओ, ऐसे सुख से क्या लाभ।
युद्ध में मार के प्रियजनों को, क्या करूँ मिले जो राज।।32।।

जिनके लिए राज्य सुख सुविधा, हैं मेरी कुर्बान।
खड़े वही हैं युद्ध को, आगे सीना तान।।33।।

गुरूजन प्रियजन मित्रगण, मामा ससुर पितामह।
पौत्र व साले सभी सम्बन्धी हैं, होगा दृश्य भयाभय।।34।।

तीनों लोक भी मिलें जो माधव, इनको ना मारूँगा मैं।
ये मुझको मारे भले, तो भी ना युद्ध करूँगा मैं।।35।।

मार के इन कौरव पुत्रों को, मन प्रसन्न ना होगा।
माना अधर्मी है फिर भी, मार के पाप लगेगा।।36।।

अपने बन्धुओं को हम माधव, मारने योग्य नहीं हैं।
कुटुम्ब नाश कर सुख पाऊँ, यह नीति सही नहीं है।।37।।

यद्यपि लोभ में भृष्ट लोग ये, कुल का नाश क्या जानें।
ये तो अपने रिस्ते–नातों के , वध में पाप ना मानें।।38।।

कुल का नाश ना हो प्रयास, वह हमको करना चाहिए।
हो अन्याय ना माधव इससे, हमको बचना चाहिए।।39।।

कुल के नाश से होता है, सम्पूर्ण सनातन नाश।
पाप बहुत बढ़ जाते हैं, होता अधर्म का वास।।40।।

अधर्मी कुल की नारियाँ भी, दोषित हो जाती हैं।
अवांछित सन्तान भी वो, कुल में जन्माती हैं।।41।।

अपने कुल को ये सन्तानें, नरक में ले जाती हैं।
कुल के पितरों–पूर्वजों को, दुःख ये पहुँचाती हैं।।42।।

ये वर्णशंकर कारक दोष, कुल को नष्ट करते हैं।
और सनातन धर्मकुल को भी, ये भ्रष्ट करते हैं।। 43।।

जिसका हो कुलधर्म नष्ट, वो जगहा नरक में पाए।
है माधव ये बात सत्य है, ऐसा सुनते आए।।44।।

राज्य सुखों को पाने की, इच्छा से प्ररित होकर।
प्रियजनों को मारें हम, क्यों अपना विवेक खोकर।।45।।

मैं निहत्था रण में जो इनके, हाथों मारा जाऊँ।
हे माधव मैं सत्य कहूँ, कल्याण इसमें ही पाऊँ।।46।।

संजय कहे धृतराष्ट्र से, पार्थ ने शोक अपार किया।
छोड़ के धनुष वाण वो रथ में, पीछे जाकर बैठ गया।।47।।

।। प्रथम अध्याय सम्पूर्ण।।

अध्याय –दो
साँख्य योग गीता सार

शोकाकुल करूणा से व्याप्त, जब अर्जुन हुआ।
बोला संजय हे राजन तब, कृष्ण ने उससे कहा।। 1।।

अर्जुन तुम्हें ये मोह क्यों, असमय प्राप्त हुआ।
ना ये आचरण श्रेष्ठ पुरूष का, कोई इससे ना स्वर्ग गया।। 2।।

हे अर्जुन ना बनो नपुंसक, शोभा नहीं तुम्हारी।
हृदय की दुर्बलता त्यागो, जागो वीर बलकारी।। 3।।

बोले अर्जुन हे मधुसूदन, कैसे शस्त्र उठाऊँ।
भीष्म द्रोण दोनों ही पूजित, कैसे दुःख पहुँचाऊँ।। 4।।

इन्हें मारने से तो अच्छा, भिक्षा से गुजर करूँ मैं।
वरना जीवन भर गुरूजन का, रक्त पिपासा बनूँ मैं।। 5।।

हार जीत मैं श्रेष्ठ क्या है, ये ना सूझे मुझे।
इनका वध कर जीतूँ भी तो, जीवन नर्क मुझे।। 6।।

मोह में चित्त फँसा मेरा, भूला कर्तव्य सारा।
श्रेष्ठ राह मुझको दिखलाओ, मैं हूँ शिष्य तुम्हारा।। 7।।

ना कोई साधन दिखता मुझको, शोक जो दूर करे।
स्वर्ग मिले या धरती सारी, कैसे रोग कटे।। 8।।

संजय बोला हे राजन, अर्जुन ने फिर कहा।
युद्ध करूँ ना मैं माधव, ये निर्णय है मेरा।। 9।।

हे धृतराष्ट्र कृष्ण ने देखा, अर्जुन का मन डोले।
हँसते हुए वचन तब माधव, अर्जुन से ये बोले।। 10।।

शोक कर रहे उनका तुम जो, शोक के योग्य नहीं हैं।
जन्म मरण का शोक करते, ज्ञानी कभी नहीं हैं।। 11।।

ना तो ऐसा है कि हम किसी, काल में नहीं।
ना ही ऐसा होगा कि, आगे रहेंगे नहीं।। 12।।

बचपन जवानी वृद्धावस्था ज्यों, धारण करे शरीर।
आत्मा भी तन को बदले, न मोह में फँसते हैं धीर।। 13।।

क्षणिक हैं सुख दुःख कालबृह्म में, करो ना उनका ध्यान।
जैसे गर्मी सर्दी सहते, सहलो इन्हें सुजान।। 14।।

निश्चित रूप से श्रेष्ठ पुरूष, विचलित कभी ना होते।
सुख दुःख जो सम मानें वो, मुक्ति मार्ग पर होते।। 15।।

असत्य की सत्ता नहीं कोई, सच का नहीं अभाव।
यही है ज्ञानी पुरूषों का, निश्चित एक अभाव।। 16।।

अविनाशी समझो इसे, जो कण कण में है व्याप्त।
उस आत्मा को कर सके , कोई नहीं समाप्त।। 17।।

आत्मा को कहीं आँच नहीं, देह की मृत्यु अटल।
भरत वंशी अब युद्ध करो, तुम दिखालाओ निज बल।। 18।।

जो समझे कि आत्मा, मरती है मरती है।
अज्ञानी है वो आत्मा ना, ऐसा करती है।। 19।।

आत्मा कभी नहीं जन्में, नाहीं मरे कभी।
है अजन्मी नित्य शाश्वत, है पुरातन यही।। 20।।

हे अर्जुन जो आत्मा को, अविनाशी जाने।
किसी को मारना और मरना, फिर क्या है वो माने।। 21।।

जैसे पुराने वस्त्र त्याग के, मनुष्य पहने नया।
इक तन त्यागे आत्मा, शरीर बदले नया।। 22।।

नहीं जलती ये अग्नि से , ना मरे शस्त्रों से।
नांही जल में डूबे वो, ना वायु सुखाए उसे।। 23।।

है अखण्डित अघुलन वो, ना जले ना सूखे।
शाश्वत सर्वव्यापी अविकारी, है सत्य हम कहते।। 24।।

ना तो कल्पना हो उसकी, और नाहीं वो दिखे।
फिर क्यों शोक करते हो, ऐसी वस्तु के लिए।। 25।।

अगर सोचते हो महाबाहु, है आत्मा जीती मरती।
कारण फिर भी कोई नहीं, शोक लहर जो चलती ।। 26।।

जिसकी मृत्यु हो जाए उसका, पुनर्जन्म है निश्चित।
शोकाकुल होते हुए क्यों, कर्तव्य से हो विचलित।। 27।।

जन्म से पहले मृत्यु के बाद, थे अप्रकट ये लोग।
कुछ समय को ही प्रकट हैं, क्यों करते हो शोक।। 28।।

देखे सुने बताए कोई, आत्मा का आश्चर्य।
वो अभागा प्राणी है जो, समझे ना ये रहस्य।। 29।।

है शरीर में अवध्य यह, इसका वध नहीं होता।
क्यों तू व्यर्थ में ही अर्जुन, इसका शोक है करता।। 30।।

क्षत्रिय धर्म का मनन करो, युद्ध ही जिसका धर्म।
युद्ध से बढ़के क्षत्रिय का , दूजा कोई न कर्म।। 31।।

भाग्यवान क्षत्रियों को ही, मिलता यह अवसर।
सबसे बड़ा है कर्म यही, स्वर्ग लोक पथ पर।। 32।।

धर्म युद्ध कर्तव्य से , विमुख हुए जो आप।
कीर्ति होगी खत्म सब, और लगेगा पाप।। 33।।

तुमसे वीर को है होती, अकीर्ति मृत्यु समान।
सारा जगत हँसेगा तुमपे, है ये घोर अपमान।। 34।।

जिन–जिन योद्धाओं ने दिया, नाम यश सम्मान।
कायर कहेंगे वे तुम्हें, ना मान रहे ना आन।। 35।।

कटु शब्दों से शत्रु तुम्हारी, हँसी उड़ाऐंगे।
तुम्हारी शक्ति और पौरूष पे, उँगली उठाऐंगे।। 36।।

या तो युद्ध में हे अर्जुन, वीरगति पाओगे।
या फिर जीत के पृथ्वी पे, राज्य चलाओगे।। 37।।

जय–पराजय लाभ–हानि, सुख–दुख जान समान।
करोगे युद्ध अगर पार्थ, नहीं पाप का लगे निशान।। 38।।

ज्ञान योग तुमको दिया, कर्म योग की बात सुनो।
उसे हृदय रख कर्म करोगे तो, हटेगा कर्म बन्धन है सुनो।। 39।।

इसमें हानि ना कोई ह्रास, भय से है मुक्ति मिले।
इस कर्मयोग से जन्म–मृत्यु की, चिन्ता भी मन से हटे।। 40।।

मार्ग पे जो इसपे चले, उनका लक्ष्य हो एक।
जो भटक जाते कुरूनन्दन, उनके मत हों अनेक।। 41।।

स्वर्ग को श्रेष्ठ जो मानते , वेद वाक्यों में प्रीत रखें।
ऐसे अज्ञानी सभी स्वार्थ वश, होकर ही हैं कर्म करें।। 42।।

ऐश्वर्य और इन्द्रिय भोग में, समझे जो आनन्द।
वो ईश्वर से दूर रहें, पाऐं ना परमानन्द।। 43।।

इन्द्रिय भोग और भौतिक, ऐश्वर्यों में आसक्त।
ऐसे मोह ग्रस्त प्राणी, नहीं होते प्रभु के भक्त।। 44।।

वेदों में हैं जो तीन गुण, हे अर्जुन उन्हें त्याग।
हर्ष शोकादि द्वन्दों की, मोह निन्द्रा से जाग।। 45।।

बड़े जलाशय को प्राप्त कर, कुऐ पे कौन जाए।
ऐसे ही बृह्म को जानले जो, वेदों से क्या पाए।। 46।।

कर्म करना अधिकार तुम्हारा, फल का ना करो विचार।
यही समझ के कर्म करो, मानो ना जीत और हार।। 47।।

जय पराजय का मोह त्याग, अपना कर्म करो।
रह समभाव में हे अर्जुन, समता भाव धरो।। 48।।

सकाम कर्म निन्दित है , इससे दूर रहो।
बुद्धि योग का आश्रय ले, निष्काम कर्म करो।। 49।।

पाप पुण्य से मुक्त होते, प्राणी समबुद्धि युक्त।
समत्वरूप से कर्म कर , हो कर्म बन्धन से मुक्त।। 50।।

समबुद्धि के ज्ञानीजन, फल का ना करते विचार।
पाते निर्विकार पद को, होते वो भव से पार।। 51।।

मोह के दलदल को जब तुम्हारी, बुद्धि पार करेगी।
लोक और परलोक के भोगों से, तुमको मुक्ति मिलेगी।। 52।।

विविध वचनों से विचलित मन, प्रभु में लग जाएगा।
प्रभु से कर संयोग तब तू, परमानन्द पाएगा।। 53।।

।। अर्जुन ने पूछा ।।

समाधि में स्थित प्राणी के , क्या लक्षण हैं केशव।
कैसे बोले बैठे कैसे, चलता है वह मानव।। 54।।

बोले कृष्ण सभी त्याग कामना, रहता आत्मा में लीन।
स्थित प्रज्ञ कहलाता वो, साधक परम प्रवीन।। 55।।

दुख से विचलित ना होता, सुख में ना खुशी मानए।
वो स्थिर मन वाला प्राणी, श्रेष्ठ मुनि कहलाए।। 56।।

शुभ को प्राप्त कर हर्षे ना, अशुभ से दुखे ना मन।
अपने आप में पूर्ण स्थिर, होता वो ज्ञानीजन।। 57।।

ज्यों कछुआ अपने अंगों को, खोल में लेता छुपाय।
ऐसे हीं ज्ञानी पुरूष विषय, इन्द्रियों को लेता दबाय।। 58।।

इन्द्रिय भोग की इच्छा कभी, जीव की मिट नहीं पाती।
स्थित प्रज्ञ पुरूष की पर हर, आशा तृप्त हो जाती।। 59।।

इन्द्रियाँ होती हैं इतनी प्रबल कि, हर लेती हैं विवेक को।
वश में कर लेती उसे जो, चाहे वश करना इनको।। 60।।

इन्द्रियों को वश में करके, जो भी ध्यान धरे।
स्थिर बुद्धि हो उसकी, विषयों से रहे परे।। 61।।

इन्द्रियों का चिन्तन ही मन को, जाल में है फँसाए।
काम क्रोध फिर प्रकट हो, मन व्याकुल हो जाए।। 62।।

क्रोध से पूर्ण मोह उत्पन्न हो, मोह से स्मरण भ्रम।
बुद्धि नाश हो भव में अटके, ये हैं इसका क्रम।। 63।।

राग द्वेष से मुक्त इन्द्रियाँ, वश में करता है जो।
प्रभु भक्ति में समर्थ होता है, ऐसा मानस वो।। 64।।

प्रभु भक्ति से उस व्यक्ति के, तीनों ताप मिटें।
तुष्ट चेतना से बुद्धि हो, मन से ना प्रभु हटे।। 65।।

जीते ना जो मन इन्द्रि को, स्थिरता ना पाए।
शान्ति उसे नहीं मिलती, शान्ति बिन सुख नहीं आए।। 66।।

जैसे जल में नाव को, हवा बहाले जाए।
वैसे ही विषय इन्द्रियों को, मन भी रहता है भटकाए।। 67।।

हे अर्जुन जिस प्राणी की, इन्द्रियाँ वश में हैं।
समझ लो अर्जुन उसी जीव की , बुद्धि स्थिर है।। 68।।

सब जीवों को जो रात है, आत्म संयमी को दिन।
नाशवान सुख है जग को, योगी जिए उन बिन।। 69।।

जैसे नदियाँ समुद्र को, विचलित ना कर पाऐं।
वैसे ही स्थिर पुरूष में, भोग सभी समा जाऐं।। 70।।

इच्छा ममता अहंकार को, त्याग के जो जीता।
शान्ति प्राप्त होती उसे, कहती यही गीता।। 71।।

योगी बृह्म को भी प्राप्त हो, मोहित होता ना पार्थ।
अन्त में ब्राह्मी स्थिति में , बृह्मानन्द करे प्राप्त।। 72।।

।। अध्याय दो सम्पूर्ण ।।

अध्याय–तीन

।। कर्मयोग ।।

।। अर्जुन बोले ।।

हे जनार्दन ज्ञान योग को जो, श्रेष्ठ आप कहते हो।
घोर युद्ध साकाम कर्म की, शिक्षा फिर क्यों देते हो।। 1।।

आपके घुले–मिले वचनों से, बुद्धि मोहित हो गयी।
जिससे हो कल्याण मेरा, क्यों बात नहीं है वो कही।। 2।।

हे अर्जुन इस लोक में, दो तरहा की निष्ठा है होती।
सांख्ययोगियों की ज्ञानयोग, योगियों की कर्मयोग होती।। 3।।

कर्म त्यागने से नहीं, हृदय शुद्ध कहलाता है।
बिना कर्म ना सन्यासी भी, सिद्धियों को पाता है।। 4।।

इक क्षण को भी ना कोई प्राणी, कर्म किए बिन रहता।
प्रकृति जनित गुणों के वश हो, कर्म हर कोई करता।। 5।।

हठ से जो इन्द्री वश करता, मन विषयों में लगता।
स्वयं को धोखा देता वो, मित्थ्याचारी कहलाता।। 6।।

इन्द्रियों को मन से वश में, जो अपने कर लेता।
कर्म योग का करता आचरण, श्रेष्ठ वही है होता।। 7।।

कर्म न करने से अच्छा है, कर्म करना होता।
कर्म बिना मानव शरीर का, संचालन नहीं होता।। 8।।

कर्म करो तुम यज्ञ समझकर, हो समर्पण भाव।
कर्म बन्धन बंधे मनुष्य का, अर्जुन यही बचाव।। 9।।

यज्ञ सहित प्रजाओं को रचकर, प्रजापति ने कहा।
इच्छित भोग प्रदान करेगा, तुमको ये यज्ञ महा।। 10।।

तुम देवों को प्रसन्न करो, वो तुमको फिर वर देंगे।
इक दूजे को उन्नत कर, सबका कल्याण करेंगे।। 11।।

इन्द्रिय भोग करते हैं जो, देवों से वर पाकर।
चोर होते हैं देते ना, देवों का जो भोग सादर।। 12।।

जो प्रभु का प्रसाद मानकर, खाते जो भक्त कहाते।
शरीर पोषण का जो खायें, वो हैं पाप कमाते।। 13।।

प्राणी अन्न से अन्न वर्षा से, वर्षा यज्ञ से है होती।
शास्त्र विहित कर्मों से ही यज्ञ की, कामना पूर्ण है होती।। 14।।

कर्म को वेद से वेद को प्रभु से, उत्पन्न हुआ तू जान।
सदा यज्ञ में रहते व्यापक, श्री हरि भगवान।। 15।।

प्रचलित सृष्टि चक्र का जो कोई, पालन नहीं है करता।
इन्द्रिय भोग में लिप्त वो प्राणी, व्यर्थ में यूं ही जीता।। 16।।

आत्मा में ही लीन तृप्त, संतुष्ट जो प्राणी होता।
उसके लिए अहम् जग में, कोई कर्तव्य न होता।। 17।।

कर्म करे या ना करे, प्रयोजन कोई ना रहता।
स्वार्थ रखे ना वो किसी से, आत्म सिद्ध जो होता।। 18।।

फल की चिन्ता छोड़ कर्म को, करना ही है धर्म।
बिना लोभ के कर्म करना, बृह्म का है ये मर्म।। 19।।

राजा जनक आसक्ति रहित, कर्मों से सिद्धि पाए।
तू भी कर्म कर हे अर्जुन, यही है एक उपाय।। 20।।

महापुरूष के आचरण पर, चलता पूरा समाज।
वैसे ही ये करे विश्व, जैसा वो करे काज।। 21।।

तीनों लोकों में मुझको, कुछ भी नहीं अप्राप्त।
फिर भी कर्म करता हूँ मैं, सुन लो तुम हे पार्थ।। 22।।

यदि मैं कर्म करूँ ना तो , सुनो पार्थ क्या होगा।
करेंगे मेरा अनुशरण सब, कर्म न कोई करेगा।। 23।।

शास्त्र सम्मत कर्म करूँ न , यदि मैं ही नारायण।
वर्णशंकर पैदा होंगे, बनेंगे नाश के लक्षण।। 24।।

ज्यों अज्ञानी फल इच्छा से, करते सभी हैं कर्म।
वैसे ही अनासक्त हो ज्ञानी, करके दिखाऐं कर्म।। 25।।

सकाम कर्म के अज्ञानी को , ज्ञानी ना रोकने जाऐ।
शास्त्र विहित कर्म करके उसे, सच्चा मार्ग दिखाए।। 26।।

प्रकृति के ही गुणों के द्वारा, कर्म सभी होते हैं।
अहंकार वश अज्ञानी, कर्ता स्वयं बनते हैं।। 27।।

गुण विभाग और कर्म विभाग के, तत्व को जो जाने।
जो समझे यह भेद अर्जुन, खुद को कुछ ना वो माने।। 28।।

माया मोह में अज्ञानी जो, भौतिक कर्मों में लीन।
ज्ञानी उन्हें रोकें नहीं, रहने दें तल्लीन।। 29।।

अपने सभी कर्म अर्जुन, मुझको समर्पित कर।
लाभ–हानि ममता–सन्ताप, रहित हो युद्ध तू कर।। 30।।

श्रद्धा युक्त होकर जो मेरे, मत का अनुसरण करते हैं।
कृपा से मेरी कर्म बन्धनों, से वो जग में छुटते हैं।। 31।।

मुझमें दोष दिखाके , जो ना मेरे मत को मानें।
उन मूर्खों को सत्य में अर्जुन, नष्ट हुआ ही जानें।। 32।।

हर प्राणी प्रकृति के वश, कर्म है अपने करता।
ज्ञानवान भी ऐसा ही करता, हठ नहीं इसमें चलता।। 33।।

इन्द्रिय विषयों में राग व द्वेष, छिपे हुए होते हैं।
वश में ना इनके होना चाहिए, ये शत्रु होते हैं।। 34।।

गुण से रहित भी धर्म अपना, दूसरे धर्म से अच्छा है।
अपने धर्म में मरने से भी, कल्याण ही होता है।। 35।।

।। अर्जुन वचन ।।

हे कृष्णा फिर किससे प्रेरित, होकर पाप जन करते।
ना चाहते ये कौन कराए, दूर है मेरी समझ से ।। 36।।

।। कृष्ण वचन।।

रजों गुण से उत्पन्न है होते, क्रोध और काम।
भोग–भोग के ना अघाए, तू इसे बैरी जान।। 37।

अग्नि धुँए से, मैल से दर्पण, और जेर से भ्रूण।
काम वासना से वैसे ही, ज्ञान ढका रहे पूर्ण।। 38।।

हे अर्जुन यह कामरूप है, जो अग्नि के समान।
ज्ञानियों का वैरी बनके, ढकता बुद्धि ज्ञान।। 39।।

इन्द्रियाँ मन और बुद्धि हैं, इसके वास स्थान।
इनको वश में करके ये, नष्ट करें हैं ज्ञान।। 40।।

इन्द्रियों को वश करके अपने, हे पाँडव कुमार।
ज्ञान और विज्ञान के नाशक, काम को पहले मार।। 41।।

बुद्धि से मन को वश में कर, श्रेष्ठ आत्मा को जान।
काम रूप शत्रु को मार, हे महाबाहों महान।। 42।।

।। अध्याय तीसरा सम्पूर्ण ।।

अध्याय–चार

।। दिव्य ज्ञान।।

।। कृष्ण वचन।।

मैंने योग का दिव्य ज्ञान, सूर्य को था बतलाया।
सूर्य ने पुत्र मनु को, मनु ने इक्ष्वाकु को सुनाया।। 1।।

परम्परा गुरू से इस ज्ञान को, राज ऋषियों ने जाना।
लुप्त हो गया पृथ्वी से लेकिन, योग का ज्ञान पुराना।। 2।।

तू मेरा भक्त व प्रिय सखा है, इसलिए तुझे बताता हूँ।
वही पुरातन ज्ञानयोग को , तुझको पार्थ सुनाता हूँ।। 3।।

आपके जन्म से पहले प्रगटे, जब सूर्य भगवान।
मैं कैसे मानूँ भगवन, दिये आप ये उनको ज्ञान।। 4।।

हुए अनकों हैं जन्म मित्र, मेरे और तुम्हारे।
भूल चुके हो तुम उनको, मुझको याद हैं सारे।। 5।।

सुनो हे अर्जुन मैं अजन्मा, और अविनाशी हूँ।
होता प्रकट हर युग में हूँ, मैं ही सबका स्वामी हूँ ।। 6।।

होती धर्म की हानि जब–जब, अधर्म का हो विस्तार।
तब–तब पृथ्वी पर लेता हूँ, मैं अर्जुन अवतार।। 7।।

करने दुष्टों का विनाश, और भक्तों का उद्धार।
आता हूँ हर युग में मैं, करने धर्म विस्तार।। 8।।

मेरे दिव्य कर्मों को जो , भक्त है जान जाता।
पुनर्जन्म नहीं लेता वो, मेरा धाम फिर पाता।। 9।।

भय और क्रोध से होके मुक्त, शरण मेरी जो आए।
पवित्र होके मेरे ज्ञान से, दिव्य प्रेम मेरा पाए।। 10।।

भक्त भजे जैसे मुझको , मैं भी उसे हूँ भजता।
क्योंकि हर कोई प्राणी मेरे , मार्ग का अनुशरण है करता।। 11।।

मनुष्य लोक में कर्म सिद्धि को , देवताओं को ध्याते हैं।
क्योंकि उनको पूजके प्राणी, शीघ्र कर्मफल पाते हैं।। 12।।

वर्ण चार मैंने रचे, त्रिगुण कर्म अनुसार।
सब कुछ करने पर भी मैं, रहता उनसे पार।। 13।।

कर्म प्रभाव से मुक्त मैं, फल की ना आशा करता।
जो मुझे तत्व से जान ले, कर्मों से नहीं बंधता।। 14।।

मुक्त आत्माओं ने मेरी, दिव्य प्रकृति थी जानी।
अनुसरण करके उनका, कर्म करो हे ज्ञानी।। 15।।

कर्म अकर्म के चक्र में, ज्ञानी जन भी मोहित हो जाते।
बतलाता हूँ मैं मार्ग तुझे, कैसे इस अशुभ से छुट पाते।। 16।।

कर्म अकर्म क्या हैं ये , क्या है विकर्म पहचान।
इसका हरेक जीव को, चाहिए करना ज्ञान।। 17।।

कर्म में देखे अकर्म जो , अकर्म में कर्म देखता।
बुद्धिमान उस मानव को , मैं कर्मयोगी मानता।। 18।।

कर्म जिसके सभी कामना, इच्छा रहित होते ।
उसको ज्ञानी जन भी महान, पंडित हैं कहते।। 19।।

कर्मफलों का त्यागकर जो, लीन प्रभु में रहता है।
सभी कर्मों को करते हुए भी, सत्य में कुछ नहीं करता है।। 20।।

सभी इन्द्रियों को जो जीते , मन के वश ना होता।
आशा रहित वो, देह कर्म कर, पाप को प्राप्त न होता।। 21।।

स्वतः लाभ से हो सन्तुष्ट, हर्ष शोक नहीं करता।
सिद्धि असिद्धि में सम रहता वो नहीं कर्मों में बंधता।। 22।।

प्रकृति के तीनों गुणों से, जो रहता है दूर।
लिप्त रहे दिव्य ज्ञान में, रहता बृह्म में चूर।। 23।।

जिस यज्ञ में अर्पण, दृव्य, कर्ता , आहूति बृह्म है।
उस यज्ञ से प्राप्त होने वाला, फल भी स्वयं बृह्म है।। 24।।

कुछ योगी यज्ञ द्वारा ही, देवता पूजन करते हैं।
कुछ परमेश्वर बृह्म का, आत्मरूप यज्ञ करते हैं।। 25।।

कुछ योगी इन्द्रियों को संयम से भस्म कर देते हैं।
कुछ समस्त विषयों की इन्द्रियाग्नि में, आहूति देते।। 26।।

इन्द्री प्राण की क्रियाओं को, योगी वश करते हैं।
आत्म संयम की अग्नि में फिर, स्वाहा उन्हें करते हैं।। 27।।

दृव्य और तप संबन्धी यज्ञ, कितने ही करते हैं।
अष्टांग योग करते कई, कई पूजन भी करते हैं।। 28।।

प्राणायाम समर्थ योगी, समाधि में लीन हैं रहते।
कुछ अल्पहारी योगी श्वांस को रोक के तप हैं करते ।। 29।।

यज्ञ अर्थ जानने के कारण, ये पाप मुक्त हो जाते।
ये सब साधक योग से , बृह्म को प्राप्त हो जाते।। 30।।

यज्ञ से बचे अमृत को चखे, जो पारबृह्म को पाता है।
लोक और परलोक में बिना,यज्ञ के कुछ नहीं मिल पाता है।।31।।

जिन यज्ञों के गुणों का बखान, वेद करे विस्तार से।
मन इन्द्रियों से कर अनुष्ठान, छुट कर्मों के संसार से।। 32।।

द्रव्यमय यज्ञ की अपेक्षा, है ज्ञानयज्ञ ही श्रेष्ठ।
दिव्य ज्ञान से हो जाता है, कर्म यज्ञों का अन्तेष्ट।। 33।।

तत्वदर्शी ज्ञानियों को , करके तुम प्रणाम।
सेवा करके पूछना प्रश्न, वो देंगे तुम्हें ज्ञान।। 34।।

मोह ग्रस्त ना होगा तू , तत्व ज्ञान को जान।
जीव अंश परमात्मा के, तब इसका हो ज्ञान।। 35।।

पापियों से भी पापी यदि, तुझको माना जाए।
ज्ञान नौका से लेकिन तू, पाप सिन्धु तर जाए।। 36।।

ज्यों प्रज्जविल अग्नि में, ईंधन भस्म हो जाता।
वैसे ही ये तत्वज्ञान है, सब कर्मों को जलाता।। 37।।

ज्ञान सा पावन करने वाला, कुछ भी नहीं संसार में।
कर्मयोगी पाता इसे निज, आत्मा के ही सार में ।। 38।।

जितेन्द्रिय साधन परायण, ज्ञान को प्राप्त है होता।
भगवत् प्राप्ति रूप, शान्ति को भी प्राप्त वो करता।। 39।।

विवेक, श्रद्धा, संशय से युक्त, परमार्थ से भटकता।
ऐसे मनुष्य को लोक परलोक, कहीं भी सुख नहीं मिलता।। 40।।

कर्मयोग से कर्मों को जो , प्रभु के अर्पण करता।
विवेक से संशयों को मिटाता, नहीं कर्म में बंधता।। 41।।

हे अर्जुन अज्ञान जनित, संशय को विवेक से मार।
समस्त रूप कर्मयोग स्थित हो, युद्ध को हो तैयार।। 42।।

।। अध्याय चौथा सम्पूर्ण।।

अध्याय–पाँच

।। अर्जुन वचन।।

कभी कर्मों के सन्यास कभी कर्मयोग की।
बातें करो क्यों कृष्ण दो, कहो श्रेष्ठ एक ही।। 1।।

।। कृष्ण वचन।।

कर्म सन्यास और कर्मयोग, दोनों ही हैं उत्तम।
इन दोनों में भी अर्जुन, कर्मयोग अति उत्तम।। 2।।

राग द्वेष से दूर रहे, नहीं आकाँक्षा कोई करता।
ऐसा सन्यासी भव बन्धनों से है, मुक्त ही रहता।। 3।।

अज्ञानी ही इन दोनों को , अलग–अलग माने।
कर्मयोग और कर्मसन्यास से , प्रभु को सब जानें।। 4।।

ज्ञानयोगियों का परमधाम, कर्मयोगी प्राप्त करें।
वहीं यथार्थ देखते हैं फल, जो इनको एक समझें।। 5।।

भक्ति बिना जो त्यागे कर्म, सुखी नहीं रह पाता।
भक्ति मार्ग पर चलने वाला, परमेश्वर पा जाता।। 6।।

मन जिसका हो अपने वश, इन्द्री विजयी कहलाता।
आत्मा ही परमात्मा जिसका, वो बन्धनों से छुट जाता।। 7।।

सांख्य योग देखे, सुने, बोले अथवा गमन करे।
सब कुछ करता हुआ वो जाने, कि वो कुछ भी ना करे।। 8।।

बोलते त्यागते ग्रहण करते, और बन्द करते पलक।
समझे इन्द्रियाँ कार्यरत हैं, वह है उनसे अलग।। 9।।

कर्म फलों को परमेश्वर पे, जो अर्पित कर दे।
रहे पापों से मुक्त ज्यों जल से, कमल का पत्ता रहे।। 10।।

कर्मयोगी आशक्ति रहित हो, जो भी कर्म करे।
इन्द्री, मन, बुद्धि और तन से, भी शुद्धि से कर्म करें।। 11।।

कर्मयोगी कर्मफल त्याग से, भगवत् प्राप्ति करे।
सकाम पुरूष कामनाओं के कारण, फल में बंधा रहे।। 12।।

अन्तःकरण हो जिसका वश में वो, कर्म करे ना करे।
नौ द्वारों में रहे सुखी वो, बृह्म में रमा रहे।। 13।।

ना तो कर्म ना कर्मफल, ना कर्त्तापन की।
सब ये प्रकृति वश होते, रचे ईश्वर ना कुछ भी।। 14।।

पाप पुण्यों को ग्रहण किसी के, करता ना परमेश्वर।
ढका रहे अज्ञान से ज्ञान, उसी का है ये असर।। 15।।

परमात्मा के तत्व ज्ञान से, जिनका मिटे अज्ञान।
उनको प्रभु प्रकाशित दिखते, दिन में सूर्य समान।। 16।।

मन बुद्धि, श्रद्धा से मानव, हो शरणागत ईश्वर के।
पूर्व ज्ञान से शुद्ध होता, द्वार खुलें प्रभु दर के।। 17।।

बृाह्मण, गौ, हाथी, कुत्ते, चण्डाल को समझे सम।
ज्ञानी जन नहीं रखते हैं, किसी के प्रति भी भ्रम।। 18।।

जिसका मन समता में स्थिर, जन्म–मृत्यु ले जीत।
बृह्म सम निर्दोष वो, सुख को करे है प्रतीत।। 19।।

प्रिय वस्तु पे हर्षित ना हो, अप्रिय से ना दुःखी।
मोह रहित स्थिर रहे उसे, बृह्म भी रखता सुखी।। 20।।

मुक्त पुरूष भौतिक सुख से , जो आकर्षित नहीं होता।
पारबृह्म के ध्यान में ही उसे सर्वानन्द है मिलता।। 21।।

कुन्ती पुत्र भौतिक भोगों का, आदि अन्त है निश्चित।
इन्द्री–विषयों के उन भोगों से, बचते प्राणी बुद्धित।। 22।।

देह नाश से पहले वो ही, योगी पुरूष कहलाता।
काम क्रोध के वेग सहन में, समर्थ वो हो जाता।। 23।।

आत्मा में जो रमण करे, उसी में सुख पाए।
सांख्य योगी वो ही शान्त बृह्म को है फिर पाए।। 24।।

संशय त्याग सब जीवों का, जो कल्याण करे।
पाप रहित वो बृह्मवेत्ता , बृह्म को प्राप्त करे।। 25।।

काम क्रोध से मुक्त जो, चित्त पे रखे अधिकार।
ऐसे ज्ञानी पुरूष का, पारबृह्म आधार।। 26।।

आज्ञाचक्र पर ध्यान लगाए, जो भृकुटि के मध्य।
योग साधना कर वो योगी, हो जाते हैं साध्य।। 27।।

बुद्धि मन और इन्द्रियाँ जो, वश में अपने करे।
मोक्ष परायण इच्छा रहित वो, सदा ही मुक्त रहे।। 28।।

भक्त जो मुझको यज्ञ तपों को, भोगने वाला जाने।
पाए अचल शान्ति वो ईश्वर, सर्वलोकों का जो माने।। 29।।

।। अध्याय पाँच सम्पूर्ण।।

अध्याय–छः

।। ध्यान योग।।

आश्रय कर्मफलों का ना लेकर, कर्म करें वो हैं योगी।
केवल अग्नि त्यागने वाला सन्यासी, ना है योगी।। 1।।

कहे सन्यास जिसे ऐसा, योग उसे ही जान।
संकल्पों के त्याग बिना ना, योगी बने महान।। 2।।

योगी मननशील पुरूष निष्काम कर्म करता है।
सब संकल्पों के त्याग से ही वह साधक फिर बनता है।। 3।।

भौतिक इच्छाओं को त्यागे इन्द्रिय तृप्ति विरक्त।
सकाम कर्म से दूर रहे वह भी है पूर्ण भक्त।। 4।।

अपना स्वयं संसार समुद्र से जो उद्धार करें।
स्वयं को ही अपना वह मित्र और शत्रु समझें।। 5।।

जिसने मन इन्द्रियों को जीता, परम मित्र अपना है।
जो ऐसा नहीं कर पाए, वो शत्रु अपना है।। 6।।

स्वाधीन आत्मा वाला पुरूष रहे, सुख–दुःख में जो समान।
ऐसे योगी के ज्ञान में, बसते स्वयं भगवान।। 7।।

ज्ञान–विज्ञान से तृप्ति योगी, जो संतुष्ट है रहता।
सोना मिट्टी जिसको समान वो भगवत् प्राप्त है करता।। 8।।

शुभ चिन्तक हों ईर्श्यालु हों , शुत्रु हों या मित्र।
वह विलक्षण योगी देखे, है सबका एकसा चित्र।। 9।।

मन श्रद्धा व ध्यान लगाए, आत्मा में जो भी।
संग्रह और इच्छा रहित हो, प्रभु में स्थित हो ही।। 10।।

पवित्र भूमि कुशा का आसन उस पर हो मृगछाला।
ना ऊँचा ना नीचा बैठे, योग साधने वाला।। 11।।

उस आसन पर बैठ के, वश में इन्द्रियों को करे।
अन्तःकरण की शुद्धि हेतु, योगा अभ्यास करे।। 12।।

सीधा सिर गर्दन रखे नासिका पे करे ध्यान।
योगाभ्यास में चित्त धरे, बिन भटकाए ध्यान।। 13।।

बृह्मचारी भय से रहित अन्तकरण कर शुद्ध।
मेरे परायण होके ध्यान करे, साधक वो है प्रबुद्ध।। 14।।

मन को वश में करके योगी, मुझको ही पा जाता ।
परमानन्द की पराकाष्ठा वो शान्ति प्राप्त कर पाता।। 15।।

खाना–सोना अधिक हो जिनका, या बहुत ही कम।
ऐसा साधक सफल ना होता, कहते अर्जुन हम।। 16।।

यथा योग्य चेष्टा करे और खाए सोए।
दुःख नाशक ये योग उसी को ही है सिद्ध होए।। 17।।

वश में किया हुआ चित्त जब प्रभु स्थित हो जाता।
ऐसे काल से मुक्त पुरूष, योग युक्त हो जाता।। 18।।

वायु रहित स्थान पर दीपक हिले डुले ना।
उसी तरह योगी का मन ध्यान से विचलित हो ना।। 19।।

योग से निरूद्ध चित्त जब होता है उपराम।
बृह्म के दर्शन में ही उसे मिले आनन्दाराम।। 20।।

इन्द्रियों से अतीत बुद्धि पाती अनन्त आनन्द।
ऐसी अवस्था में योगी अविचलित, पाता बृह्मानन्द।। 21।।

बृह्म प्राप्ति के लाभ से बढ़कर और कोई ना लाभ।
इस स्थिति को प्राप्त कर योगी को रहे ना कोई वैराग।। 22।।

संसारिक दुःखों से है मुक्त जो, योग है जिसका नाम।
धैर्य और उत्साह से सबको, साधना चाहिए ये ज्ञान।। 23।।

संकल्प जनित सम्पूर्ण, कामनाओं को त्याग कर।
और मन द्वारा इन्द्रियों के समुदाय को रोक कर।। 24।।

धीरे–धीरे जो सद्बुद्धि से, समाधि की ओर बढ़े।
आत्मा में मन स्थिर कर, प्रभु चिंतन वो करे।। 25।।

चंचल मन विचरण करे भौतिक जगत की ओर।
इसे इन्द्रियों के विषयों से रोक कर , करो परमात्मा ओर।। 26।।

शान्त मन और पाप रहित हो, रजोगुण जिसका हो शान्त।
बृह्म युक्त ऐसे योगी को हो, उत्तम आनन्द प्राप्त।। 27।।

पाप रहित वो योगी चित्त को प्रभु में लगाता है।
परम बृह्म परमात्मा का अनन्त आनन्द वो पाता है।। 28।।

सर्वव्यापी परमात्मा में स्थित सबको समान है जाने।
स्वयं को सबमें सबको स्वयं में, स्थित योगी वो माने।। 29।।

आत्म रूप से सबमें जो देख रहा है मुझको।
मुझ बासुदेव में देखे, दिखता हूँ मैं उसको।। 30।।

एक ही भाव से , स्थित होकर जो मुझको भजता।
सब भाँति से मैं उसमें हूँ, और वह मुझमें रहता।। 31।।

अपना जैसा सबमें सबको जो देखे है समान।
सुख–दुःख में जो सम होता, वही योगी श्रेष्ठ महान।। 32।।

हे मधुसूदन योग विधि का किया जो ये वर्णन।
नित्य स्थिति देख ना पाए, चंचल है ये मन।। 33।।

चंचल मन होता ये हठीला और दृढ़ बलवान।
हे प्रभु मन वश में करना, वायु रोकने के समान।। 34।।

हे अर्जुन मन को वश करना, अति कठिन है काम।
वैराग्य और अभ्यास से ही इस पर लगे लगाम।। 35।।

वश में नहीं मन जिसका उसको योग नहीं सधता।
जो मन वश में कर सके, योग में वही रमता।। 36।।

योग में श्रद्धा हो जिसकी किन्तु नहीं हो संयम।
अन्तकाल विचलित योगी की, कैसी गति हो भगवन।। 37।।

भगवत् प्राप्ति के मार्ग में आश्रय रहित जो होता।
छिन्न–भिन्न बादल के जैसा कहीं नाद तो नहीं होता।। 38।।

इस संदेह को दूर करें, आपसे विनती करूं।
आपके सिवा समर्थ नहीं कोई, जिसका ध्यान धरूं।। 39।।

नहीं लोक परलोक में अर्जुन, उसका नाश है होता।
आत्मोद्धार को भगवद् प्राप्ति के लिए कर्म जो करता।। 40।।

दीर्घकाल तक तप कर योगी, होता योग जब भ्रष्ट।
अच्छे कुल में लेता जन्म वह तप नहीं होता नष्ट।। 41।।

या फिर किसी योगी के कुल में जन्म लेता वो।
है संसार में दुर्लभ लेकिन, ऐसा जन्म पाता वो।। 42।।

पूर्व के संग्रह संस्कारों से बुद्धि योग वो पाता।
हे कुरूनन्द पुनः योगी वो प्रभु प्राप्ति में लग जाता।। 43।।

श्रीमानों के जन्म लेकर रहता प्रभु में आकर्षित।
सकाम कर्मों से मुक्त हो रहता, हमेशा है वो हर्षित।। 44।।

परन्तु यत्नशील योगी, पिछले संस्कारों के कारण।
इसी जन्म में संसिद्ध होके, करता है मोक्ष को धारण।। 45।।

शास्त्र ज्ञानियों तपस्वियों से, योगी श्रेष्ठ है होता।
इसीलिए हे अर्जुन तू भी, योगी क्यों नहीं बनता।। 46।।

अन्तरात्मा से योगी मुझको, निरन्तर जो भजता।
सभी योगियों में श्रेष्ठ वो, योगी अर्जुन मुझे लगता।। 47।।

।। अध्याय छः सम्पूर्ण।।

अध्याय–सात

।। ज्ञान–विज्ञान योग।।

पूर्ण विभूति बल ऐश्वर्य युक्त, मैं सबका आत्मरूप।
अनन्य प्रेम से योगरत, जानो अर्जुन ऐ स्वरूप।। 1।।

अब तुमको विज्ञान सहित मैं तत्व ज्ञान बतलाऊँ।
जान इसे न शेष रहे कुछ, सत्य मैं तुम्हें बताऊँ।। 2।।

हजारों में कोई एक मुझे पाने का यत्न करता।
और उनमें भी विरल ही मेरे तत्व को है समझता।। 3।।

जल, नभ, अग्नि, पृथ्वी, वायु, मन बुद्धि अहंकार।
अपरा प्रकृति में विभक्त, मेरे ये आठ प्रकार।। 4।।

पराशक्ति और भी एक मेरी, अर्जुन देना ध्यान।
जिससे जगत धारण किया जाता, चेतन प्रकृति जान।। 5।।

सभी भूत इन प्रकृतियों से ही होते उत्पन्न।।
मैं ही जगत का मूलकारण, प्रभव प्रलय सम्पन्न।। 6।।

धागे में ज्यों मोती गुँथें मुझसे गुँथें हैं सब।
मुझसे भिन्न नहीं कोई भी, मुझमें ही हैं सब।। 7।।

हे अर्जुन ये जल में रस, चन्द्र– सूर्य में प्रकाश।
वेदों में औंकार मैं नभ ध्वनि पुरूषों में पुरूषार्थ।। 8।।

पृथ्वी में गंध, अग्नि में ऊष्मा, कण कण में हूँ मैं।
जीवों के जीवन तपस्वियों के तप में भी हूँ मैं।। 9।।

सब जीवों का बीज मैं, सबमें है मेरा तेज।
बुद्धिमानों की बुद्धि में तपस्वियों का हूँ तेज।। 10।।

हे अर्जुन बलवानों का मैं काम रहित हूँ बल।
धर्मानुकूल काम मैं, शास्त्रानुकूल निश्छल।। 11।।

मेरी शक्ति से ही प्रकट प्रकृति के गुण तीन।
आधीन प्रकृति है मेरी, मैं नहीं हूँ आधीन।। 12।।

सत रज तम के गुण से हैं, मोह ग्रस्त संसार।
मुझ गुणातीत अविनाशी का, करे ना कोई विचार।। 13।।

त्रिगुणमयी माया मेरी है, ये अति दुस्तर।
इससे वही निकलता जो न्यौछावर मुझपर।। 14।।

माया के द्वारा है जिनका ज्ञान हरा जाता ।
असुर स्वभावी, नीच मूर्ख वो मुझको ना भज पाता।। 15।।

चार प्रकार की पुण्यात्मा मेरी भक्ति करती पार्थ।
जिज्ञासू, अथार्थी , ज्ञानी चौथी श्रेणी आर्त।। 16।।

अनन्य प्रेम भक्ति वाला ही, भक्त श्रेष्ठ कहलाता।
तत्व से जाने जो मुझे मेरा प्रिय वो हो जाता।। 17।।

ज्ञानी तो मेरा ही स्वरूप है ऐसा मेरा मत है।
मद्गत मन बुद्धि वाला जो भक्त मुझी में रत है।। 18।।

कई जन्मों अन्त में जो, तत्व ज्ञान को प्राप्त हो।
सब कुछ बासुदेव हैं माने, भक्त वो दुर्लभ पार्थ हो।। 19।।

भोगी की इच्छा ने जिनका, ज्ञान हर लिया पार्थ।
भिन्न–भिन्न देवों को पूजें वो, मन में लेकर स्वार्थ।। 20।।

जो जो सकाम भक्त जिस देवता का करे पूजन।
उस उस भक्त की श्रद्धा को मैं, करूँ उसी को अर्पण।। 21।।

अपनी कामना पूर्ति को जो, देव पूजन करता।
उसको भी फल मैं ही देता, नाम देव का होता।। 22।।

फल है उनका नाशवान देवों को प्राप्त वो होते।
लेकिन मुझे भजने वाले, अन्त में मुझमें मिलते।। 23।।

मूर्ख मेरे उत्तम अविनाशी भावों को नहीं जाने।
जन्म लिए व्यक्ति की तरहा साधारण मुझे माने।। 24।।

अज्ञानी मुझे जन्मरहित अविनाशी नहीं मानते हैं।
जन्मता मरता हूँ मैं भी, वो तो ये ही जानते हैं।। 25।।

भूत भविष्य वर्तमान सबको मैं हूँ जानता।
किन्तु श्रद्धा भक्ति रहित कोई भेद मेरा ना जानता।। 26।।

इच्छा द्वेष सुख दुःख आदि, द्वन्दों से करके मोह।
हे अर्जुन प्राणी अज्ञानता को ही प्राप्त होय।। 27।।

निष्काम कर्म करने वाले, होते हैं पाप मुक्त।
राग द्वेष द्वन्दों से रहित वो मुझमें होते संयुक्त।। 28।।

भक्त मेरे जो जन्म मरण से छूटना चाहते हैं।
वो आध्यात्म कर्म और बृह्म को जानते हैं।। 29।।

अन्तकाल तक आत्मरूप मुझे जानते जो सबका।
अन्त में मुझमें ही वास होता, है निश्चित उनका।। 30।।

।। अध्याय सप्तम समाप्त।।

अध्याय–आठ

।। अक्षर बृह्मयोग भगवत् प्राप्ति।।

।। अर्जुन वचन।।

बृह्म क्या, अध्यात्म क्या, क्या है कर्म भगवान।
आदिदेव किसको कहते अधिभूत है किसका नाम।। 1।।

अधियज्ञ है क्या वह कैसे तन में रह पाता।
अन्त समय भक्तों को कैसे नजर वो है आता।। 2।।

।। भगवान ने कहा।।

परम असर बृह्म है, अध्यात्म आत्मा कहलाता।
आसक्ति रहित कर्म सकाम, अर्जुन कर्म कहलाता।। 3।।

उत्पत्ति विनाश धर्म वाले सब पदार्थ है अधिभूत।
विश्वरूप अधिदेव हैं, है अधियज्ञ मेरा स्वरूप।। 4।।

पुरूष जो अन्तकाल में याद, मुझको करता है।
दुविधा ना कोई इसमें वो, मुझमें ही मिलता है।। 5।।

शरीर त्यागते समय भाव, जिसका जैसा होता।
निश्चित रूप से उसको अर्जुन, फल वैसा मिलता।। 6।।

इसलिए तू युद्ध कर, मेरा करके तू ध्यान।
करेगा प्राप्त तू मुझको, संशय ना इसमें मान।। 7।।

जो परमेश्वर में हो लीन, चित्त ना कहीं लगाता।
परम प्रकाशस्वरूप दिव्य पुरूष को प्राप्त वो होता।। 8।।

अतिसूक्ष्म, अचित्यरूप, सूर्य सम तेजवान।
अनादि सर्वज्ञ, नियन्ता का, जो करता है ध्यान।। 9।।

अन्तकाल में भी वो भक्त, योग से ध्यान लगाता ।
भृकुटि मध्य प्राण स्थित कर, बृह्मलीन हो जाता।। 10।।

भेद परमपद का बताऊँ कहते जिसे अभिनाशी।
प्राप्त करके आसक्ति रहित, बृह्मचारी सन्यासी।। 11।।

इन्द्री द्वार कर बन्द जो, मन हृदेश स्थित करे।
मन का जीत फिर प्राण को, मस्तक में स्थापित करे।। 12।।

बृह्म का करके चिन्तन, करे ऊँ का ध्यान।
वह पुरूष परमगति पाए है परम महान।। 13।।

अनन्य भाव से जो सदा स्मरण मेरा करते हैं।
मेरे से नित्ययोगी सहज ही मुझमें आ मिलते हैं।। 14।।

मुझको प्राप्त होकर, परम सिद्ध महात्माजन।
मिटा लेते दुःख अपने पाते, नहीं हैं पुर्नजन्म।। 15।।

बृह्मलोकादि सब लोकों में आवागमन का बंधन है।
जो पा जाता मेरा धाम फिर, उसका ना पुनर्जन्म है।। 16।।

बृह्म के एक दिन को जो एक हजार चतुर्युगी माने।
एक रात को भी इतना ही माने वो काल तत्व को जाने।। 17।।

बृह्म के दिन के प्रवेशकाल में चराचर उत्पन्न होते।
और रात्रि के प्रवेश काल में उनमें लीन फिर होते।। 18।।

यही चराचर उत्पन्न होके प्रकृतिवश हो जाता।
रात्रिकाल में विलीन दिन में फिर उत्पन्न हो जाता।। 19।।

अव्यक्त बृह्म से भी अति परे अवयक्त भाव इक होता।
वह दिव्य पुरूष भूतों के नष्ट होने से भी न नष्ट होता।। 20।।

परमगति कहें अव्यक्त भाव को जिसका अक्षर नाम।
जहाँ से मनुष्य आते नहीं वो मेरा पावन धाम।। 21।।

परमात्मा में सर्वभूत हैं वहीं हैं सबमें व्याप्त।
वह सनातन परम पुरूष हो, अनन्यभक्ति से प्राप्त।। 22।।

विभिन्न कालों के बारे में अब मैं तुम्हें बताता।
मृत्यु बाद जग में योगी, आता है या नहीं आता।। 23।।

अग्नि, दिन, शुक्ल पक्ष प्रभाव या सूर्य उत्तरायण रहता।
इन कालों में मृत्यु पाने वाला बृह्म को प्राप्त है करता।। 24।।

धुएँ , रात, कृष्णपक्ष दक्षिणायन में जो योगी मृत्यु पाते।
भोग के फल पुण्यकर्मों का स्वर्ग से वापिस आते।। 25।।

शुक्ल मार्ग से गये हुए परमगति को पाते।
कृष्णमार्ग पितृयान से गये हुए पुनर्जन्म फिर पाते।। 26।।

इन मार्गी के तत्व जानके योगी न मोहित होते।
हे अर्जुन समबुद्धियुक्त हो क्यों ना तुम कर्म करते।। 27।।

वेद, यज्ञ, , तप दानादि के पुण्यों का उलंघन कर जाता।
रहस्य को तत्व से जानके योगी परमपद को पाता।। 28।।

।।अध्याय आठ सम्पूर्ण।।

अध्याय–नौ

हे अर्जुन अब परम गोपनीय ज्ञान मैं तुझे सुनाता।
जिसको सुनके दुःख रूपी जग से, प्राणी मुक्त हो जाता।। 1।।

गोपनीय रहस्यों का ये ज्ञान है सुनो सर्वोत्तम।
धर्मयुक्त प्रत्यक्ष अविनाशी विद्या है जो उत्तम।। 2।।

उपरोक्त धर्म में श्रद्धा ना रखते जो मुझे ना प्राप्त करें।
भौतिक जगत में अर्जुन वो कई बार जन्में मरें।। 3।।

जैसे जल से बर्फ बने , मुझसे बना संसार।
सब कुछ मुझमें स्थित है, मैं नहीं किसी में निराकार।। 4।।

भूतों का धारण–पोषण करने वाला हूँ मैं।
योगशक्ति देखो मेरी मैं फिर भी नहीं उनमें।। 5।।

वायु रहे आकाश में, आकाश रहे ना पवन में।
ऐसे ही प्राणी मुझमें स्थित, मैं नहीं हूँ उनमें।। 6।।

कल्पों के अन्त में सब प्राणी मेरी प्रकृति में आते।
पुनः कल्प आरम्भ होते ही जन्म वो पा जाते।। 7।।

अपनी प्रकृति को अंगीकार कर रचता मैं संसार।
कर्मों के अनुसार ये सब होता है बार–बार।। 8।।

उन कर्मों में उदासीन और आसक्ति रहित।
सदृश स्थित परमात्मा में, होता नहीं मैं बंधित।। 9।।

मेरी ही शक्ति से प्रकृति, सर्वजगत को रचती।
अधिष्ठाता में ही इसका ये सृष्टि है जो चलती।। 10।।

मनुष्य रूप में अवतरित मैं, होता हूँ जब जब।
तत्व ना मेरा जानने वाले, समझें ना मुझे तब।। 11।।

व्यर्थ आशा, कर्म और ज्ञान उनके होते हैं।
अज्ञानी वो आसुरी मोहिनी प्रकृति में रहते हैं।। 12।।

देवी प्रकृति पे आश्रित जो, हैं महात्माजन।
जान सनातन अक्षरस्वरूप करते मेरा भजन।।13।।

मेरा कीर्तन मेरी महिमा वो गावे भक्ति भाव से ।
पूजा करें महात्मा वो मेरी, ही सदभाव से।। 14।।

कोई निर्गुण निराकार समझ बृह्म यज्ञ करता।
विविध प्रकार से मुझ परमेश्वर को कोई–कोई भजता।। 15।।

कृतु यज्ञ, स्वधा और औषधि मैं हूँ।
मन्त्र, घृत, अग्नि और हवनक्रिया मैं हूँ।। 16।।

माता– पिता, पितामह हूँ, करूँ धारण जगत सदैव।
ओंकार शुद्धि कर्त्ता हूँ, ऋग साम और यजुर्वेद।। 17।।

स्वामी, साक्षी, पालन कर्त्ता , परमधाम हितकारी हूँ।
स्थिति का आधार निधान उत्पत्ति प्रलयकारी हैं।। 18।।

सूर्य ताप और वर्षा का आवागमन भी मैं।
आत्मा पदार्थ और अमृत, जीवन मरण भी मैं।। 19।।

वेद पढ़े सोमपान करें, पाप रहित होते हैं।
करके यज्ञ पाऐं स्वर्ग को, देव भोगों को भोगते हैं।। 20।।

स्वर्ग लोक आनन्द भोग जब, पुण्य क्षीण हो जाते।
भोग इच्छा रखने वाले वो फिर पृथ्वी पर आते।। 21।।

मेरे अनन्य भक्त जो मेरा हर क्षण ध्यान करें।
भक्त वो मेरे द्वारा योगक्षेम को प्राप्त करें।। 22।।

श्रद्धा से सकाम भक्त जो दूसरे देवों को पूजते हैं।
पूजते हैं वो मुझको ही , वो विधि गलत अपनाते हैं।। 23।।

समस्त यज्ञों का हे अर्जुन मैं ही हूँ भोक्ता।
जो नहीं तत्व से मुझे जानें , उन्हें पुनर्जन्म मिलता।। 24।।

देवों को पूज देवों का होता, पितरों को पूज पित्रों का।
भूतों को पूज भूतों का होता, मुझको पूज के मेरा।। 25।।

जो भी प्रेम से पत्र, पुष्प, फल मुझको अर्पण करता।
शुद्ध बुद्धि उस भक्त का भोग मैं स्वीकार हूँ करता।। 26।।

कर्म करो या दान करो, या फिर करो तप।
मुझको ही अर्पित करो अर्जुन कर्म अपने सब।। 27।।

शुभाशुभ फल व कर्मबन्धन से मुक्त वो है होता।
अपने समस्त कर्म जो मुझको अर्पण अर्जुन करता।। 28।।

हूँ समभाव से व्यापक सबमें कोई प्रिय ना अप्रिय।
परन्तु अनन्य भक्त जो मेरे , मैं उन्हें वो मुझे प्रिय।। 29।।

अतिशय दुराचारी भी यदि मेरा भजन करते।
इसके समान कुछ नहीं साधुसम वो तरते।। 30।।

धर्मात्मा हो जाता वो परमशान्ति को प्राप्त।
जान तू अर्जुन सत्य ये , नहीं भक्त हो मेरा समाप्त।। 31।।

वैश्य, शूद्र, चण्डाल कोई भी, शरण जो मेरी आते।
लोक संवारते हैं अपना, परमगति वो पाते।। 32।।

पुण्यशील बृह्मण व राजऋषि करते परमगति प्राप्त।
क्षण भंगुर तन तूने भी पाया, करो भजन हे पार्थ।। 33।।

मन को लगाओ नित्य चिन्तन में, भक्त बनो मेरे पार्थ।
इस प्रकार तुम निश्चित ही , मुझको करोगे प्राप्त।। 34।।

।। अध्याय नौ सम्पूर्ण ।।

अध्याय–दस

।। विभूति योग।।

।। श्रीकृष्ण बोले ।।

अर्जुन अब मैं तुम्हें अपना परम रहस्य सुनाऊँगा।
यह ज्ञान मैं तुझको तेरे हित के लिए बताऊँगा।। 1।।

कारण मेरी उत्पत्ति का, जाने ना ऋषि देवगण।
इन सब ऋषि और देवों का मैं ही तो हूँ उद्दगम कण।। 2।।

जानते जो मुझको तत्व से अनादि ईश्वर महान।
पाप मुक्त हो जाता वह, मनुष्य हो ज्ञानवान।। 3।।

बुद्धि, ज्ञान, संशय, क्षमा, सत इन्द्रियों का वशीकरण।
सत्य, सुख–दुःख भय, अभय, मन निग्रह और जन्म मरण।। 4।।

अहिंसा समता तुष्टि तप यश अपयश और दान।
सभी उत्पन्न हो भाव मुझी से, सबमें मेरा प्रमाण।। 5।।

चौदह मनु और सप्तऋषि, इन से भी पूर्व ऋषि चार।
मेरे संकल्प से उत्पन्न हुए, जिन्होंने रचा संसार।। 6।।

मेरी विभूति ऐश्वर्य को, तत्व से जो जाने।
निश्चय भक्त मेरा बन जाता, संशय नहीं माने।। 7।।

कारण मैं जग उत्पत्ति का, मुझसे चेष्टा जग करता।
विद्वान भक्त ये समझकर ही मुझको निरन्तर है भजता।। 8।।

मन और प्राण समर्पित कर जो मेरी भक्ति चर्चा करते।
रमण करें वो निरन्तर मुझमें, सदैव संतुष्ट हैं रहते।। 9।।

प्रेम से भजते जो मुझे, करें सत्त मेरा ही ध्यान।
प्राप्त करते वो मुझे, समझ तत्व का ज्ञान।। 10।।

कृपा उनपे करने को , करके अन्तःकरण में वास।
करता तत्वज्ञान दीपक से, अज्ञान अंधेरे का नाश।। 11।।

परमबृह्म व परमधाम , हैं परम पवित्र आप।
सर्वव्यापी अजन्मे आदि दिव्य पुरूष हैं आप।। 12।।

नारद असित देवल व्यास, सब यही सत्य सुनाते।
हे वासुदेव आप स्वयं भी बात यही बतालाते।। 13।।

मुझसे जो भी कहा आपने, सत्य मैंने है माना।
आपके लीलामयी रूप को, देव दानव कोई ना जाना।। 14।।

परमपुरूष देवों के देव, अखल विश्व के स्वामी।
आप ही जानो स्वयं को, हे अविनाशी अन्तर्यामी।। 15।।

जिन विभूतियों से लोकों में, व्याप्त रहो भगवान।
आप ही समर्थ हो कहने में, उन विभूतियों का ज्ञान।। 16।।

जानने के लिए प्रभु आपको, कैसे करूँ मैं चिन्तन।
स्मरण करूँ किन रूपों में आपको मैं भगवन।। 17।।

योगशक्ति और विभूति को कहिए प्रभु का विस्तार।
तृप्ति मेरी मिट पाती नहीं सुन वचनामृत की धार।। 18।।

तुझसे कहूँगा मैं अर्जुन मुख्य विभूतियों का सार।
चूंकि मेरे दिव्य रूपों का है अनन्त विस्तार।। 19।।

जीव हृदय में स्थित आत्मा, है मेरा ही स्वरूप।
वर्तमान व भविष्य मैं हूँ, मैं ही सबका भूत।। 20।।

आदिति पुत्रों में हूँ विष्णु, प्रकाश में सूर्य हूँ मैं।
वायुदेवों का तेज हूँ मैं, नक्षत्र अधिपति चन्द्र मैं।। 21।।

वेदों में सामवेद हूँ मैं, देवों में इन्द्र देवता।
इन्द्रियों में मन मैं हूँ अर्जुन, जीवों में हूँ उनकी चेतना।। 22।।

रूद्रों में मैं हूँ शंकर, यक्षों में हूँ कुबेर मैं।
आठ वस्तुओं में अग्नि हूँ, पर्वतों में हूँ सुमेर मैं।। 23।।

पुरोहितों का मुखिया वृहस्पति मुझको ही तू जान।
सोनापतियों में स्कन्द हूँ मैं, जलाशय में सागर मान।। 24।।

महर्षियों में भृगु ऋषि, अक्षरों में ओंकार।
यज्ञों में जपयज्ञ हूँ मैं, स्थिरों में हिमालय पहाड़।। 25।।

वृक्षों में वृक्ष पीपल हूँ मैं, देवऋषियों में नारद हूँ मैं।
गन्धर्वों में हूँ चित्ररथ, सिद्धों में कपिल मुनि हूँ मैं।। 26।।

घोड़ों में उच्चैश्रवा मैं, हाथियों में ऐरावत हूँ।
सुन ले अब तू पार्थ ये मनुष्यों में मैं राजा हूँ।। 27।।

शास्त्रों में बज्र, गौओं में कामधेनु हूँ मैं।
सन्तानोत्पत्ति को कामदेव, सर्पों में वासुकी हूँ मैं।। 28।।

जलचर अधिपति वरूण मैं हूँ , नागों में शेषनाग हूँ मैं।
पितरों में अर्यमा पितर हूँ, शासकों में यमराज हूँ मैं।। 29।।

गणना करने वालों को समय, दैत्यों में प्रहलाद हूँ मैं।
पक्षियों में गरूड़ हूँ , पशुओं में सिंह मृगराज हूँ मैं।। 30।।

शास्त्रधारियों में राम हूँ, पवित्र करने वालों में पवन।
नदियों में गंगा हूँ मैं, मछलियों में हूँ मैं मगर।। 31।।

समस्त सृष्टियों का अर्जुन आदि मध्य व अन्त हूँ मैं।
विद्याओं में हूँ बृह्मविद्या, तर्कशास्त्रियों का सत् तथ्य हूँ मैं।। 32।।

अक्षरों में आकार हूँ मैं, द्वन्द समास महाकाल भी मैं।
सबका पोषण कारक हूँ, स्वरूप हूँ अति विराट मैं।। 33।।

मैं कारक जन्म और मृत्यु का, स्त्रियों में कीर्ति हूँ मैं।
श्री वा मेधा मैं हूँ, क्षमा स्मृति धृति भी हूँ मैं।। 34।।

श्रुतियों में मैं बृहत्साम, छन्दों में हूँ गायत्री छन्द।
महीनों में मैं मार्गशीर्ष, और ऋतुओं में हूँ बसन्त।। 35।।

छलों में जुआ, विजेता की जय , प्रभावशालियों का प्रभाव मैं।
निश्चय करने वालों का निश्चय, सात्विकों का सात्विक भाव मैं।।

वृष्टि वंशियों में वासुदेव मैं , पाण्डवों में अर्जुन भी हूँ।
मुनियों में वेद व्यास हूँ मैं, कवियों में शुक्राचार्य भी हूँ।। 37।।

जीतने वालों की नीति हूँ, दण्ड दमन कारियों का मैं।
गुप्त भाव रक्षक मौन हूँ, तत्व ज्ञान हूँ ज्ञानियों का मैं।। 38।।

सब जीवों की उत्पत्ति का , मैं ही कारण कहलाता।
चर अचर जीव संसार में कोई मेरे बिन रह ना पाता।। 39।।

मेरे दिव्य रूपों का ना अन्त कभी भी हो पाए।
रूप ये मैंने अपने तुझे संक्षेप में सुनाए।। 40।।

वस्तु वो सभी जिनमें, ऐश्वर्य कान्ति व है शक्ति।
उन सबको तू मान मेरे तजे के अंश की अभिव्यक्ति।। 41।।

इस ज्ञान को बहुत जानने का, पार्थ क्या है प्रयोजन।
सम्पूर्ण जगत को मैं योगशक्ति से अंश मात्र से करूँ धारण।।42।।

।। अध्याय दस सम्पूर्ण ।।

अध्याय–ग्यारह

।। विराट रूप।।

।। अर्जुन ने कहा।।

गोपनीय अध्यात्म का दिये, प्रभु उपदेश आप।
सुनके दिव्य ज्ञान को मिटा मोह संताप।। 1।।

उत्पत्ति प्रलय भूतों की सुनी आपसे भगवान।
अविनाशी महिमा को तुम्हारी गया हूँ मैं अब जान।। 2।।

जैसा कहते आप वो सब ठीक है परमेश्वर।
ज्ञान ऐश्वर्य– शक्ति– तेजयुक्त देखना चाहूँ रूप ईश्वर।। 3।।

विश्वरूप दर्शन में यदि मैं समर्थ हूँ योगेश्वर।
उस अविनाशी स्वरूप को दिखलाइये हे परमेश्वर।। 4।।

देखो अब तुम हे अर्जुन, मेरे विराट स्वरूप को।
ऐश्वर्य तेजयुक्त विविध रंगों वाले रूप को।। 5।।

मुझमें आठ वसु ग्यारह रूद्र अदिति के बारह पुत्र।
उनन्चास मरूदगणों दो अश्विनि पुत्रों को देखो कुन्ती पुत्र।। 6।।

विश्वरूप में स्थित सब जो भी देखना चाहोगे।
भूत भविष्य चर अचर इसी में सब पाओगे।। 7।।

देख सको जो रूप मेरा, करूँ दिव्य नेत्र प्रदान।
मेरे योग ऐश्वर्य का जो कर सको दर्शनपान।। 8।।

संजय बोले धृतराष्ट्र से, प्रभु ने कहे ये बैन।
विश्वरूप दर्शन कराया देकर के दिव्य नैंन।। 9।।

अर्जुन देखें विश्वरूप में मुख और नयन हजार।
आभूषण तन, शस्त्र हाथ और गले मणि का हार।। 10।।

दिव्य वस्त्र हैं, दिव्य गन्ध से महके दिव्य शरीर।
व्याप्त सकल बृह्माण्ड में, देखें अर्जुन धर धीर।। 11।।

एक साथ प्रकाशित हों हजारों सूर्य आसमान।
तभी तेज उनका हो सके, विश्व रूप के समान।। 12।।

श्रीकृष्ण के शरीर में देखा सकल संसार।
अलग अलग बृह्माण्ड खण्ड देखे पाण्डुकुमार।। 13।।

आश्चर्य से चकित अर्जुन दर्शन विश्वरूप के करता।
भक्तिभाव से करके दण्डवत, हाथ जोड़ यह कहता।। 14।।

देखना चाहता आप में, देव भूत इक साथ।
समस्त ऋषि और दिव्य सर्प बृह्मा शिव भोलेनाभ।। 15।।

विश्वरूप हैं आपके अनेक पैर मुख हाथ।
चारों ओर बस आप हैं, अनादि विश्व के नाथ।। 16।।

मुकुट गदा और चक्रयुक्त हो दिव्य प्रकाशमान।
सूर्य और अग्नि सम तेजमय अप्रमेय स्वरूप महान।। 17।।

पारबृह्म हैं आप ही सर्वजगत आधार।
अनादि धर्म के रक्षक हो, अविनाशी आप मुरार।। 18।।

आदि मध्य ना अन्त आपका है यक्ष अपरम्पार।
निकलती अग्नि मुख से आपके , तेज से जले संसार।। 19।।

एक आप ही व्याप्त हैं, त्रिलोक और अवकाश।
देख आपका रूप ये करे सबके मन भय वास।। 20।।

देव शरण हैं आपकी, करे स्तुति जोड़ें हाथ।
महर्षि सिद्ध मन्त्र जप के कहें कृपा करो हे नाथ।। 21।।

वसु साध्य और अश्विनी, आदित्य शिव भगवान।
पित्र गन्धर्व यक्ष असुर सब देखें अचम्भा मान।। 22।।

भुजा पाँव जांघ और मुख उदर हैं कई हजार।
व्याकुल देव और लोक हैं ज्यों हूँ मैं भी उसी प्रकार।। 23।।

वर्णयुक्त ज्योतिर्मय शरीर, विशाल मुख और नैंन।
मन विचलित भय से मेरा रहा ना धैर्य व चैन।। 24।।

देख विकराल रूप ये प्रलयकाल अग्नि के सम।
भूला हूँ मैं दिशाओं को भी डरा हुआ है स्वामी मन।। 25।।

कौरव, भीष्म, द्रोण, करण और सहायक राजा वीर।
साथ इनके हमारे भी, योद्धा महा रणधीर।। 26।।

आपके विकराल मुख में, समा रहे जगदीश।
दाड़ों के बीच में कुछों के तो चकनाचूर हुए शीश।। 27।।

धाराऐं नदियों की सभी ज्यों सागर में मिल जाऐं।
ऐसे ही प्रचण्ड मुख में आपके योद्धा रहे समाए।।28।।

जैसे पतंगा वेग से आ अग्नि में स्वाह हो जाते।
ऐसे ही अपने नाश को योद्धा आपके मुख में आते।। 29।।

सब लोकों को प्रज्जवलित मुखों से ग्रास करके तुम चाट रहे।
हे विष्णु तुम अपने तेज से, सारे जग को तपा रहे।। 30।।

कृपा करके बतालाइये उग्र रूप वाले कौन हैं आप।
नमन आपको है मेरा, हल करो मेरा भ्रम ये आप।। 31।।

लोक नाश करता मैं ही, महाकाल है नाम।
मरेंगे विपक्षी ये तेरे सब, तू शस्त्र चाहे ना थाम।। 32।।

उठो! युद्ध कर यश पाओ, करो राज्य का भोग।
केवल निमित्त मात्र हो तुम, ये मारे जा चुके लोग।। 33।।

द्रोण , भीष्म, जयद्रथ, करण कर चुका सबका संहार।
भय को त्याग के युद्ध कर, खुला विजय का द्वार।। 34।।

संजय बोले धृतराष्ट्र से , अर्जुन सुनके प्रभु की बात।
काँपते हुए नमन करके भय युक्त बोला जोड़ के हाथ।। 35।।

आपके नाम गुण से प्रभु मोहित हो रहा संसार।
राक्षस भाग रहे भय से , सिहं गज कर रहे नमस्कार।। 36।।

बृह्मा के भी आदि कर्त्ता जगन्निवास हो आप।
सत असत से परे सचिदानन्द घन भी हो प्रभु आप।।37।।

आदि देव सनातन पुरूष, दृश्य जग के आधार।
परमधाम हैं आप ही अनन्तरूप हे मुरार।। 38।।

वायु, यम, अग्नि, वरूण, चन्द्रमा हैं आप ही।
नमस्कार मेरा तुम्हें, बृह्मा व बृह्मापिता हैं आप ही ।। 39।।

चारों ओर से समर्थवान मैं करता तुम्हें प्रणाम।
अनन्त पराक्रमी सर्वव्यापी अविनाशी भगवान।। 40।।

समझके मित्र आपको पुकारा अनेकों ले नाम।
आपको प्रभु जाना नहीं, देना क्षमा का दान।। 41।।

अनादर जो प्रभु आपका कर चुका अनेकों बार।
चराचर जगत के पिता करना क्षमा सरकार।। 42।।

चराचर जगत के पिता, गुरू हो पूज्य महान।
समस्त त्रिलोकी में ना प्रभु, कोई आपके समान।। 43।।

करूँ दण्डवत आपको, हे पूज्य जगत भगवान।
पुत्र, सखा, प्रियतमा सम, करो क्षमा का दान।। 44।।

देख के विराट रूप आपका, व्याकुल मेरा हो गया मन।
अपने चतुर्भुज विष्णुरूप को ही, दिखलाइये मुझे भगवन। 45।।

मुकुट शीश हों चक्र गदा नाथ आपके हाथ।
चतुर्भुज रूप दिखाइये मुझे परम वो लक्ष्मीनाथ।। 46।।

योगशक्ति से मैंने तुझको विराट रूप ये दिखलाया।
इससे पहले अर्जुन किसी ने इसका दर्शन ना पाया।। 47।।

देख सकता न कोई भी विश्वरूप घनघोर।
वेद पढ़ें चाहे यज्ञ करें चाहे तप करें कठोर।। 48।।

व्याकुल तुम्हें नहीं होना चाहिए रूप ये देखकर।
श्रद्धा प्रेम से चतुर्भुज रूप दर्शन फिर तू कर।। 49।।

संजय कहें वसुदेव ने अर्जुन को निज रूप दिखाया।
सौम्यमूर्ति कृष्ण ने फिर धीरज अर्जुन को बंधाया।। 50।।

शान्त मनुष्य रूप को देख स्थिर हुआ मन मेरा।
श्रीकृष्ण भगवान से अर्जुन ऐसा बोला।। 51।।

देखा चतुर्भुज रूप जो ये है ये आन्त दुस्कर।
इसको देखने के लिए रहते देव तत्पर।। 52।।

देखा तुमने जिस रूप को, कोई पाए ना वेदज्ञान से।
नाहीं करके तप कठिन, ना पूजा ना दान से।। 53।।

अनन्य भक्ति के द्वारा ही मैं प्रत्यक्ष देखा जा सकता।
तत्व से जानके एक भाव से मैं प्राप्त किया हूँ जा सकता।। 54।।

मेरे परायण, भक्त मेरा आशक्ति रहित जो कर्म करे।
अनन्य भक्ति युत पुरूष वही अर्जुन मुझे फिर प्राप्त करे ।। 55।।

।। अध्याय ग्यारह सम्पूर्ण।।

अध्याय–बारह

।। भक्तियोग।।

।। अर्जुन ने पूछा।।

सतत् भक्ति करता जो आपकी या पूजे निराकार।
श्रेष्ठ अधिक कहलाने का किसको है अधिकार।। 1।।

।। कृष्ण वचन।।

मुझको समर्पित होकर के जो पूजा श्रद्धा से करते।
परम सिद्ध वो योगीजन प्रिय हैं मुझको फिर लगते।। 2।।

इन्द्रियों को वश में करके , समभाव जो सबसे रखते।
परम सत्य निराकार की पूजा जो सत् भाव से करते।। 3।।

इन्द्रिय रसों का करके त्याग, जो साधना पुण्य कमाते।
जगाके मन बृह्म ध्यान में मेरी शरण में आते।। 4।।

निराकार की भक्ति में जो हैं ध्यान रमाते।
भक्ति मार्ग में कठिनाई कुछ अधिक वो हैं पाते ।। 5।।

मेरे परायण रहके कर्म जो मुझको अर्पण करते।
सगुण रूप परमेश्वर का जो अनन्य चिन्तन करते।। 6।।

हे अर्जुन जो भक्त मेरा भक्तियोग अपनाता।
मृत्युरूप संसार समुद्र से , पार वो हो जाता।। 7।।

मुझमें ही मन को लगाके, मुझमें ही बुद्धि।
मुझमें निवास करेगा फिर, कहता सत्य सिद्धि।। 8।।

मन में अचल स्थापना मेरी जो, अर्जुन नहीं कर पाओ।
साधो निज अभ्यास योग जो मुझको पाना हो चाहो।। 9।।

यदि इस भक्तियोग का ना कर सको अभ्यास।
करके कर्म मेरे लिए, कर सकोगे मुझे प्राप्त।। 10।।

भावनामृत से भी यदि तुम ये कर्म ना कर पाओ।
मन बुद्धि को जीतके कर्मफल त्यागी बन जाओ।। 11।।

कर्मफल के त्याग से , ना श्रेष्ठ ध्यान और ज्ञान।
कर्मफलों के त्याग से मिले मन शान्ति वरदान।। 12।।

प्रेम करे सब जीवों से जो, द्वेष किसी से ना करता।
करे नहीं अभिमान, सम सुख और दुःख में रहता।। 13।।

आत्मसंतुष्टि हो जिसे संयम क्षमा जो रखता।
इन्द्रिय जीत भक्त अर्जुन मुझे वो प्रिय है फिर लगता।। 14।।

विचलित ना हो किसी से जो नहीं कष्ट किसी को देता।
सुख–दुःख में समभाव रहे वो भक्त मुझे है भाता।। 15।।

शुद्ध दक्ष चिन्ता रहित, जो फल की इच्छा ना करता।
कर्मफलों का वो त्यागी भक्त, मुझको अति सुहाता।। 16।।

हर्षित हो ना, शोक करे और नांहि पछताए।
शुभ अशुभ फल त्याग करे जो, भक्त वो मुझको भाए।। 17।।

मित्र–शत्रु, मान–सम्मान, जिसको एक समान।
सर्दी–गर्मी , सुख–दुःख आदि द्वन्दों में रहे समान।। 18।।

मौंन रहे सन्तुष्ट रहे, करे घर से नहीं नेह।
ज्ञान में दृढ़, भक्ति संलग्न उस भक्त से मुझे स्नेह।। 19।।

भक्ति का अनुसरण करें, लक्ष्य जो मुझको मान।
श्रद्धायुक्त निष्काम भक्तों से मुझको प्रेम महान।। 20।।

।। अध्याय बारह सम्पूर्ण।।

अध्याय–तेरह

।। प्रकृति–पुरूष तथा चेतना ।।

हे अर्जुन शरीर को क्षेत्र कहा जाता है।
जो इसे जाने क्षेत्रज्ञ वो माना जाता है।। 1।।

समस्त शरीरों का ज्ञाता मैं, अर्जुन समझो ज्ञान।
जो शरीर ज्ञाता को जाने उसको ज्ञानी जान।। 2।।

कर्मक्षेत्र क्या बना है कैसे क्या परिवर्तन होते।
कौन जाने प्रभाव इनका, कहाँ से उत्पन्न होते।। 3।।

क्षेत्र और क्षेत्रज्ञ क्या है , दिया ऋषियों ने भी ज्ञान।
वेद मन्त्रों में, विभागों में बृह्मसूत्र में भी है बखान।। 4।।

पाँच महाभूत, दस इन्द्रियाँ मन और इन्द्रिय विषय।
अहंकार बुद्धि रस रूप स्पर्श और गन्धमय।। 5।।

इच्छा, द्वेष, सुख, दुःख, चेतना और धृति।
इतने विकारों सहित स्थिति कही गयी क्षेत्र की।। 6।।

दम्भहीन विनम्र और सहनशील अहिंसा।
गुरू आदर पवित्र दृढ़ आत्म संयमता।। 7।।

इन्द्रिय विषय, अहंकार और जन्म–मृत्यु का त्याग।
वृद्धावस्था व रोगानुभुति के दुःख का रखे अभाव।। 8।।

पुत्र स्त्री घर और धन आदि में आशक्ति का अभाव।
प्रिय और अप्रिय प्राप्ति में चित्त रहे समभाव।। 9।।

अनन्यभाव से अव्यभिचारिणी करे जो मेरी भक्ति।
शुद्ध स्थान वासी विषयाक्त मनुष्यों से करे ना दोस्ती।। 10।।

अध्याय और तत्व ज्ञान से प्रभु को जो देखता।
उपरोक्त सभी ज्ञान हैं, अर्जुन मैं ऐसा कहता ।। 11।।

जो जानने के योग्य है जिसे ज्ञान हो परमानन्द।
न सत है न असत् ही, कहूँ अनादि वो बृह्मानन्द।। 12।।

हाथ, पैर मुख और नेत्र उसके चारों तरफ ही होते।
क्योंकि वो संसार में सबको व्याप्त हैं, स्थित होते।। 13।।

इन्द्रिय विषय को जानना, है इन्द्रिय रहित वो।
निर्गुण है पर गुण भोगे है आसक्ति रहित वो।। 14।।

बाहर भीतर व्याप्त है चर अचर में है वहीं।
सूक्ष्म है, अविज्ञेय है, है समीप भी और दूर भी।। 15।।

विष्णु रूप पालन करे , रूद्र रूप संहार।
बृह्मा रूप में वही तो है सबका रचनाकार।। 16।।

ज्योतियों की ज्योति है वो माया से भी परे।
बोधस्वरूप , तत्वज्ञान से वो हृदय में वास करे।। 17।।

इस तरह क्षेत्र और ज्ञान तथा बृह्म स्वरूप को समझाया।
जिसने तत्व से इसको जाना उसने मुझको पाया।। 18।।

प्रकृति और पुरूष दोनों को ही तू अनादि जान।
राग द्वेष सम्पूर्ण पदार्थ उत्पन्न प्रकृति से मान।। 19।।

कार्य और कारण को उत्पन्न ये प्रकृति करती।
और जीव आत्मा दुःख–सुख के भोग की हेतु होती।। 20।।

प्रकृति में स्थित ही पुरूष उत्पन्न पदार्थों को भोगता।
इन्हीं गुणों के संग के कारण योनियों में है जन्म लेता।। 21।।

देह में स्थित आत्मा ही, परमात्मा है होती।
उपदृष्टा, अनुमन्ता, भर्न्ता, महेश्वर वही भोक्ता होती।। 22।।

इस प्रकार पुरूष व प्रकृति को तत्व से जो जानता।
वह सब कर्तव्य करता फिर भी, नहीं है जन्म लेता।। 23।।

सूक्ष्म बुद्धि से ध्यान कर कुछ प्रभु को हृदय में देखते।
कुछ ज्ञानयोग से कुछ कर्मयोग से उसको प्राप्त हैं करते।। 24।।

परन्तु दूसरे कुछ पुरूष जो तत्वों को ना जानते।
देखा–देखी पूजा करें, वो भी तर जाते हैं ये मानते।। 25।।

जितने भी स्थावर जंगम प्राणी उत्पन्न हैं होते।
क्षेत्र और क्षेत्रज्ञ संयोग से ही उत्पन्न हैं वो होते।। 26।।

नष्ट होते चराचर में, परमेश्वर को अविनाशी मानें।
सबमें स्थित उसी को मानें वह यथार्थ को है जानें।। 27।।

जो सबमें समभाव से देखे परमेश्वर को समान।
नाश नहीं होता उसका कभी, पाए गति महान।। 28।।

जो सब कर्मों को प्रकृति द्वारा होता देखता है।
आत्मा को जो अकर्त्ता माने वही यथार्थ को देखता है।। 29।।

जिस क्षण पुरूष भूतों को , परमात्मा में स्थित जाने।
उनसे ही भूतों को विस्तार है, पाए बृह्म जो ये माने।। 30।।

अनादि निर्गुण होने से यह तन में स्थित होता है।
हे अर्जुन न तो कुछ करता और नांही लिप्त होता है।। 31।।

ज्यों सर्वज्ञ व्याप्त आकाश सूक्ष्म है, लिप्त नहीं होता है।
वैसे ही देह में आत्मा में कोई देह गुण लिप्त ना होता है।। 32।।

हे अर्जुन इक सूर्य ज्यों बृह्माण्ड प्रकाशित करता।
वैसे ही इक आत्मा से सब क्षेत्र प्रकाशित होता है।। 33।।

क्षेत्र क्षेत्रज्ञ के भेद को जो ज्ञान नेत्रों के तत्व से जानते।
प्रकृति से मुक्त होने वाले वो परमात्मा को हैं प्राप्त होते।। 34।।

।। अध्याय तेरह सम्पूर्ण।।

अध्याय–चौदह

प्रकृति के तीन गुण

।। श्री भगवान बोले।।

हे अर्जुन सुनो दिव्य ज्ञान मैं कहता तुमसे अब।
जिसे जानकर ऋषि–मुनि सिद्धि को प्राप्त हुए सब।। 1।।

इसी ज्ञान में स्थिर मानव मुझको पा सकता है ।
ना सृष्टि उत्पन्न से वो ना प्रलय से ही डरता है।। 2।।

मेरी बृह्ममूल प्रकृति सम्पूर्ण भूतों की योनि है।
उसमें गर्भ स्थापना करता जिससे उत्पत्ति होनी है।। 3।।

नाना प्रकार की योनियों में जो प्राणी उत्पन्न होते हैं।
प्रकृति उनकी माता कहाती और हम पिता कहाते हैं।। 4।।

सत, रज, तम तीन गुण जो प्रकृति के होते।
अविनाशी जीवात्मा को शरीर में हैं बांधते ।। 5।।

सत्व गुण जो विकार रहित निर्मल होता है।
सुख और ज्ञान के सम्बन्ध से अभिमान से बांधता है।। 6।।

रजोगुण की उत्पत्ति है आसक्ति कामना से ।
बांधता है यह जीव को कर्मफल की भावना से ।। 7।।

तीसरा गुण तमोगुण यह अज्ञान से उत्पन्न होता।
जीवात्मा को प्रमाद आलस्य निंद्रा से है बांधता।। 8।।

सतोगुण सुख में लगाए, रजोगुण कर्म में।
तमो गुण ज्ञान को ढककर लगाए प्रमाद में।। 9।।

सत, रज, तम गुण आपस में एक दूजे को दवाते।
अपने गुण बढ़ाए तीसरा दो के गुणों को दबाके।। 10।।

जब इन्द्रियां चेतन हों, बढ़े विवके व ज्ञान।
सत्व गुण बढ़ा है तब तुम ऐसा लो जान।। 11।।

रजो गुण जब बढ़ जाता तो बढ़े काम और स्वार्थ।
अनियन्त्रित इच्छा बढ़ती तृप्ति अंत ना हो पार्थ।। 12।।

जब तमोगुण बढ़ जाता है, कुरूनन्दन ये जान।
अन्धकार, प्रमाद, निंद्रा और बढ़ता अज्ञान।। 13।।

मृत्यु सतोगुण में हो तो पुरूष वो साधु समान।
उच्चलोक स्वर्ग आदि में पाता है स्थान।। 14।।

रजोगुण में मरने वाला जन्में भोगियों में।
तमों गुण में मरके ले जन्म कीट व पशुओं में।। 15।।

श्रेष्ठ कर्म का फल शुद्ध और सात्विक है कहाता।
राजस का फल दुःख, तमास का फल अज्ञान है पाता।। 16।

सतोगुण में ज्ञान उपजे रजो गुण में लोभ।
तमोगुण में प्रमाद मोह अज्ञान और क्षोभ।। 17।।

सतगुणी जाते उच्च लोक में रजोगुणी भूलोक।
तमोगुणी जावें नीची योनियों में पाते हैं नरकलोक।। 18।।

जब कोई जान लेता है कि त्रिगुण ही है कर्त्ता।
इनसे भी परे मुझे तत्व से जाने, मुझे प्राप्त वो करता।। 19।।

तीनों गुणों को लांघने में होता है जो समर्थ।
जन्म मरण कष्टों से मुक्त वो, मुझको प्राप्त हो पार्थ।। 20।।

तीनों गुणों से पार जो जाता , उसके लक्षण क्या भगवन।
कैसे पार हो तीनों गुणों से करे वो कौन सा आचरण।। 21।।

प्रकाश आसक्ति मोह उत्पन्न होने पे ना द्वेष करे।
लुप्त हो जाने पर अर्जुन ना इच्छा इनकी कभी करे।। 22।।

भौतिक गुणों की प्रतिक्रिया से निश्चल सदा रहे।
केवल गुण ही क्रियाशील हैं साक्षी बना रहे।। 23।।

सुख–दुःख सोना–मिट्टी है, प्रिय–अप्रिय एक समान।
आत्म भाव में स्थित रहे निन्दा स्तुति में समान।। 24।।

मान और अपमान में सम, मित्र–शत्रु हो समान।
गुणातीत वह पुरूष करे कर्त्तापन का ना मान।। 25।।

एकान्तप्रिय और पूर्ण भक्ति में रहता जो मगन।
तीनों गुणों को लांघ वो बृह्म का जाता बन।। 26।।

अविनाशी परबृह्म का, अमृत का नित्य धर्म का ।
आश्रय हूँ मैं अखण्ड , एक रस आनन्दमयी कर्म का।। 27।।

।। अध्याय चौदह सम्पूर्ण।।

अध्याय–पन्द्रह

।। पुरूषोत्तम योग।।

जगरूपी पीपल वृक्ष के आदि पुरूष मूल हैं।
बृह्मा शाखा, वेद पत्ते, वेद ज्ञाता ज्ञानी अनुकूल हैं।। 1।।

तीनों गुणों से पोषित शाखा ऊपर नीचे फैली हैं।
मनुष्यलोक को सकाम कर्म में जड़ ये बांधे रखती हैं।। 2।।

ना आदि ना अन्त है, इसका नहीं आधार।
अंहता वासना मूल वाली जड़ पे करो शस्त्र से वार।। 3।।

खोजो स्थान जहाँ जाके फिर आना न पड़े।
शरण पाओ उस प्रभु की जो सबका विस्तार करे।। 4।।

मोह कुसंगति से मुक्त जो शाश्वत तत्व को जानते ।
सुख दुःख से मुक्त वो मोह रहित शाश्वत राज्य को हैं पाते।।5।।

न सूर्य न चन्द्र से धाम प्रकाशित मेरा किया जाता।
परम पद प्राप्त करे प्राणी, वहाँ से लौट के जग में ना आता।6।।

देह में सनातन जीवात्मा मेरा ही अंश होता है।
वही तो मेरा मन और इन्द्रियों को सदा आकर्षित करता है।। 7।।

वायु जैसे गन्ध को ग्रहण करके ले जाता।
वैसे ही जीवात्मा मन इन्द्रियों को ग्रहण करके ले जाता।। 8।।

श्रोत्र, चक्षु, त्वचा, घ्राण मन का सहारा लेकर।
विषय सेवन करे जीवात्मा विषयों में रत होकर।। 9।।

मरते हुए, जीते हुए को, विषय भोगों में लिप्त को।
ज्ञानी ही तत्व से जानते मूर्ख ना त्रिगुणों से युक्त को। 10।।

यत्न करे योगी तो आत्मा तत्व को पहचाने।
मूर्ख यत्न करके भी नहीं आत्म तत्व को जाने।। 11।।

सूर्य चन्द्र में प्रकाश, तथा अग्नि में है जो तेज।
है उत्पन्न वो मुझसे ही मेरा ही है वो तेज।। 12।।

कर पृथ्वी में प्रवेश मैं ही सब भूतों को धारण करता।
अमृतमय चन्द्रमा होकर वनस्पतियों में ही पोषण करता।। 13।।

मैं ही प्राणियों के तन में बनके स्थित प्राण।
मैं ही अन्न पचाता बनके अग्नि रूप अपान।। 14।।

सबमें अन्तर्यामी मैं, मुझसे स्मृति ज्ञान।
वेदों का जानने वाला तथा वेदकर्त्ता मुझे मान।। 15।।

पुरूष दो प्रकार के जग में, नाशवान और अविनाशी।
शरीर नाशवान है और जीवात्मा है अविनाशी।। 16।।

इनसे भी उत्तम पुरूष परमेश्वर परमात्मा होता।
तीनों लोकों का पालन पोषण नहीं अविनाशी है करता।। 17।।

नाशवान जड़ वर्ग क्षेत्र से सर्वथा मैं दूर हूँ।
जीवात्मा से भी उत्तम, पुरूषोत्तम नाम से मशहूर हूँ।। 18।।

जो ज्ञानी मुझे तत्व से पुरूषोत्तम है जानता।
वह सर्वज्ञ पुरूष सब कुछ मुझ वासुदेव को मानता।। 19।।

हे अर्जुन यह गुप्तशास्त्र मैने तुम्हें समझाया है।
तत्व से जान कृतार्थ हो जा, ज्ञान जो मुझसे पाया है।। 20।।

।। अध्याय पन्द्रह सम्पूर्ण।।

अध्याय–सोलह

।। दैवी और आसुरी स्वभाव।।

निर्भयता हो , आत्मशुद्धि हो, हो आध्यात्मिक ज्ञान।
स्वाध्याय, यज्ञ, तप, सरलता और हो संयम दान।। 1।।

दयालु हृदय, मृदुभाषी कर्त्तापन का करके त्याग।
इन्द्रिय विषय की आसक्ति न हो इच्छा का हो अभाव।। 2।।

तेज धैर्य व हो क्षमा पूज्यता का ना अभिमान।
दैवी सम्पदा लेकर जन्मे पुरूष की ये पहचान।। 3।।

दम्प दर्प अभिमानी क्रोधी निष्ठुर और अज्ञान।
होते आसुरी गुण वाले वो, अर्जुन यह पहचान।। 4।।

दैवी सम्पदा मुक्त करे आसुरी सम्पदा दे बन्धन।
दैवी सम्पदा लेके तू जन्मा शोक ना कर पाण्डुनन्दन।। 5।।

संसार में प्राणी के दैवी आसुरी दो हैं रूप।
दैवी गुण बताये तुझे अब आसुरी का सुन स्वरूप।। 6।।

प्रवृति और निवृति को नहीं जानते आसुरी जन।
इसीलिए ना वो शुद्ध, ना सच्चे, नाहीं श्रेष्ठ उनका आचरण।। 7।।

आसुरी लोग जगत को मिथ्या बिन ईश्वर के माने।
,नर–नारी संयोग से चलता ये , इतना ही वो जाने।। 8।।

ऐसे ज्ञान का आलम्बन करते आसुरी लोग।
आत्मज्ञान व बुद्धि रहित वो जगत विनाशक लोग।। 9।।

मान व मद से चूर वो अपूर्णिय इच्छा पालकर।
झूठे तत्थ व भृष्ट आचरण लेकर जग में रहे विचर।। 10।।

मृत्यु पर्यन्त विषय भोगों की चिन्ता वो जन करते हैं।
उनका ही है भोगना सब कुछ ऐसा ही वो मानते हैं।। 11।।

आशाओं की फाँस गले में काम क्रोध में लीन।
सोना–चाँदी सब कुछ उनका धन संग्रह में प्रवीन।। 12।।

आज प्राप्त कर लिया है ये, कल और मनोरथ रचते हैं।
आज है धन इतना, कल उतना, धन के ही पीछे भागते हैं।। 13।।

एक शत्रु तो मार दिया है, औरों को अब मारूँगा।
सब सिद्धि से युक्त मैं ईश्वर, ऐश्वर्य अब भोगूँगा।। 14।।

हूँ धनी और कुटुम्ब बड़ा है, कौन है मेरे समान।
यज्ञ करे वो दान करे कि करूँ आनन्द महान।। 15।।

अज्ञानी भ्रमित चित वाले विषयों में आसक्त होकर।
वो आसुरी जन अन्त समय में गिरते हैं नरक में जाकर।। 16।।

आप अपने को श्रेष्ठ मानते, मान और मद में रहते।
नाम मात्र को वो पाखण्डी शास्त्रविधि बिन यज्ञ करते।। 17।।

उनमें अंहकार बल दर्प काम क्रोध रहे और ईर्ष्या।
स्वयं को श्रेष्ठ मानते वो ईश्वर की करते निन्दा।। 18।।

ईर्ष्यालु और क्रूर नराधम ऐसे आसुरी लोग।
आसुरी योनियों में ही विचरते ऐसा मेरा योग।। 19।।

बार–बार आसुरी योनियों में हैं जन्म वो पाते।
नीचगति और नकरवासी वो मुझको नहीं फिर पाते।। 20।।

काम क्रोध तथा लोभ ये तीन हैं नरक के द्वार।
अन्धोगति में ले जाते ये इनका करो तिरस्कार।। 21।।

जो तीनों को त्यागके परम आचरण है करता।
परमगति वह पाए अर्जुन मुझमें ही आके मिलता।। 22।।

शास्त्र नियम को तोड़ के वो अपने ढंग से कार्य करे।
सिद्धि मिले न परमगति ना सुख को ही प्राप्त करे।। 23।।

तेरे लिए कर्तव्य अकर्तव्य का शास्त्र है प्रमाण।
शास्त्र विधि से नियत कर्म कर यही है परम ज्ञान।। 24।।

।। अध्याय सोलह सम्पूर्ण।।

अध्याय–सत्तरह

श्रद्धामय विभागयोग
–श्रद्धा के विभाग–

।। अर्जुन वचन।।

हे मधुसूदन शास्त्र रहित करे श्रद्धा से पूजन।
सत–रज–तम में इस गुण का अधिकारी वो जन।। 1।।

स्वभाव से उत्पन्न श्रद्धा तीनों गुणों से मान।
सात्विक, राजसी, तामसी है वो सुनो लगाके ध्यान।। 2।।

सभी मनुष्यों की श्रद्धा है अन्तःकरण अनुरूप।
जो जैसी श्रद्धा वाला है वही है उसका रूप।। 3।।

देवों की पूजा सात्विक करते , राजस यक्ष राक्षसों की।
तामस मनुष्य पूजा करते, भूतों और प्रेतों की।। 4।।

शास्त्र विधि रहित जो करते, हैं मन कल्पित तप।
अंहकार बल आसक्ति काम से प्रेरित रत।। 5।।

जो तप करके शरीर व आत्मा को दुःख पहुँचाता है।
आत्मा में परमात्मा जाने ना, आसुर वृति कहलाता है।। 6।।

प्रकृति के अनुसार प्राणी भोजन तीन तरह का करते।
यज्ञ तप दान के तीन प्रकार हों हम अर्जुन उनको कहते।। 7।।

आयु बुद्धि बल सुख निरोग रसमय प्रीती बढाऐं।
ऐसे खाद्य पदार्थ ये सात्विक पुरूषों को हैं भाऐं।। 8।।

कड़वे खट्टे तीखे रूखे बहुत गर्म चटपते।
दुःख चिन्ता व रोग बढ़ाऐं राजस उन्हें हैं खाते।। 9।।

रस रहित दुर्गन्ध युक्त बासी अधपका भोजन।
प्रिय होते हैं ये उनको जो होते तामसी जन।। 10।।

यज्ञ वही सात्विक कहलाए शास्त्र विहित जो होता।
मन को साध फलइच्छा रहित पुरूष हैं उसको करता।। 11।।

भौतिक काम या दम्भवश यज्ञ जो भी करता है।
हे अर्जुन वह यज्ञ, राजस यज्ञ कहलाता है।। 12।।

शास्त्रविधि से हीन जो यज्ञ अन्नदान बिन होता है।
मंत्र, दक्षिणा , श्रद्धा रहित वो यज्ञ तामस होता है।। 13।।

देव, ब्राह्मण , गुरूजनों व ज्ञानीजनों का पूजन।
पवित्रता, सरलता , बृह्मचर्य ये तप हैं जिन्हें करता तन।। 14।।

उद्वेग रहित हितकारक भाषण, वेदशास्त्रों का पठन।
जो भी करते हैं समझो वाणी तप करते वो जन।। 15।।

मन प्रसन्न शान्त भाव भगवदचिन्तन करे मनन।
मन सम्बन्धी तप करता है समझो कि वह पावन जन।। 16।।

फल इच्छा से रहित जो योगी तीनों योग करते हैं।
परम श्रद्धा से किए इस तप को सात्विक तप कहते हैं।। 17।।

सत्कार और सम्मान हेतु जो घमण्ड में तप करे।
राजस ही वह तप कहलाए, स्थाई ना वो रहे।। 18।।

दूसरों को हानि पहुँचाने को जो पुरूष तप करते।
मूढ़ता हठ से किए गये उस तप को तामस तप कहते ।। 19।।

कर्तव्य समझकर दान करे जो उपकार नहीं समझे।
देशकाल व पात्र को प्राप्त उस दान को सात्विक कहते।। 20।।

प्रत्युपकार की भावना से जिसे क्लेशपूर्वक देते।
उस दान को हे अर्जुन राजस दान हैं कहते।। 21।।

बिन सत्कार कुपात्र को जो दान दिया जाता है।
हे अर्जुन वह दान तब तामस कहलाता है।। 22।।

ऊँ, तत्, सत् यह तीन हैं सच्चिदानन्द के नाम।
इसी से सृष्टि के आदि में रचे, द्विज, यज्ञ, वेद , महान।। 23।।

श्रेष्ठ पुरूषों शास्त्रविधि यज्ञ दान तप जो होती।
ऊँ के उच्चारण से ही वो सब प्रारम्भ है होती।। 24।।

तत् नाम है ईश्वर का , यह जान के है जो क्रिया करता।
यज्ञ तपरूप क्रियाऐं, कल्याण इच्छा से पुरूष करता।। 25।।

'सत्' नाम परमात्मा का सत्यभाव में प्रयोग है होता।
उत्तम कर्म में भी सत् शब्द का प्रयोग है होता।। 26।।

यज्ञ तप और दान की स्थिति को भी 'सत्' कहा जाता।
वह सब सत् कर्म है जो परमात्मा को किया जाता।। 27।।

बिन श्रद्धा के दान तप हवन, सब असत् है कहा जाता।
ना तो वह उस लोक खुशी दे ना अन्तकाल में काम आता। 28।।

।। अध्याय सत्तरह सम्पूर्ण।।

अध्याय–अट्ठारह

।। सन्यास की सिद्धि– मोक्ष सन्यास योग।।

।। अर्जुन उवाच।।

हे महाबाहो अन्तर्यामी कृपा करके बतलाइये।
तत्व त्याग सन्यास को अलग–अलग समझाइये।। 1।।

काम्यकर्मों के त्याग को पण्डित सन्यास कहते हैं।
कुशल विचारक कर्मफलों के त्याग को त्याग कहते हैं।। 2।।

दोष युक्त हैं कर्ममात्र कुछ त्यागने योग्य बताते हैं।
त्यागने योग्य नहीं यज्ञ तपदान कुछ ज्ञानी समझाते हैं।। 3।।

सन्यास और त्याग में पहले, त्याग के लिए सुन मेरे विचार।
सात्विक राजस और तामस ये हैं त्याग के तीन प्रकार।। 4।।

यज्ञ, दान, तप, रूप, कर्म, हैं नहीं त्याग करने वाले।
ये कर्म ज्ञानी पुरूषों को हैं पवित्र करने वाले।। 5।।

इन कर्मों सहित कर्त्तव्य कर्म करें, फल आसक्ति को त्याग।
मेरा निश्चिय किया हुआ ये है उत्तम भाव।। 6।।

उचित नहीं है नियत कर्मों का स्वरूप से करना त्याग।
मोह के कारण इन्हें त्यागना कहलाता है तामस त्याग।। 7।।

कर्तव्य कर्म त्यागे कोई यदि दुःख स्वरूप उन्हें जानके।
भय से कर्त्तव्य कर्म त्यागे उस त्याग को राजस मानते ।। 8।।

कर्म को कर्त्तव्य मान करे जो करके आसक्ति फल त्याग।
हे अर्जुन त्याग वही बस माना गया है सात्विक त्याग।। 9।।

शुभ कर्मों में आसक्ति ना, द्वेष ना अशुभ कर्म से करता।
सतगुण युक्त व संशयहीन विद्वान वही त्यागी होता।। 10।।

शरीरधारी मनुष्य से सम्पूर्ण कर्मों का त्याग ना होता।
इसी लिए कर्मफल त्यागी जो, वही अर्जुन त्यागी है होता।। 11।।

अच्छा बुरा, मिला जुला फल त्यागहीन मरने पर पाता।
किन्तु कर्मफल त्यागने वाले को कर्मफल है नहीं सताता।। 12।।

सांख्यशास्त्र कर्मसिद्धि के जो कारण पांच बताते हैं।
हे अर्जुन हम आज तुम्हें भलीभांति समझाते हैं।। 13।।

कर्मसिद्धि के कारणों में अधिष्ठान है प्रथम।
कर्त्ता, कारण, विभिन्न चेष्टा दैव है कारण पंचम।। 14।।

शास्त्रानुकूल व विपरीत कर्म, है जो वाणी व तन मन के।
हे पाण्डवों में श्रेष्ठ अर्जुन ये ही पाँच कारण उनके।। 15।।

पुरूष अशुद्ध बुद्धि वाले, आत्मा कोही कर्त्ता माने।।
नीच बुद्धि वाले अज्ञानी , यथार्थ को हैं नहीं जानें।। 16।।

कर्त्तापन का जिसे गर्व नहीं, ना संसार में लिप्त होता।
सब लोकों को मारके भी वह ना मरता ना पापी होता।। 17।।

ज्ञाता ज्ञान और ज्ञेय , ये कर्मों की प्रेरणा देते हैं।
कर्त्ता कारण और क्रिया, संघटक कर्म के होते हैं।। 18।।

तीन प्रकार के भेद हैं ज्ञान, कर्म, कर्त्ता गुण के ।
मुझसे भली भाँति सुन अर्जुन तीनों प्रकार तू उनके।। 19।।

ज्ञान से जिससे सब जीवों में , देखे अविनाशी भगवान।
उस पुरूष के ज्ञान को अर्जुन समझो तुम सात्विक ज्ञान।। 20।।

ज्ञान जो विभिन्न शरीरों में , प्रथक भाव दिखाता है।
हे अर्जुन ऐसा यह ज्ञान राजस ज्ञान कहाता है।। 21।।

जिससे मनुष्य कार्यरूप तन में, आसक्त रहे सम्पूर्ण जान।
तात्विक अर्थहीन व तुच्छ हो, वो कहलाए तामस ज्ञान।। 22।।

शास्त्र नियत कर्म जो कर्मफल इच्छा रहित होता।
राग द्वेष आसक्ति ना जिसमें कर्म वही सात्विक होता।। 23।।

अंहकारी जो कर्म करे भोगों की करके चाहत।
यद्यपि कर्म हो श्रमयुक्त वो कहलाता है कर्म राजस।। 24।।

हानि हिंसा सामर्थ्य बिन जाने, शुरू कर्म जो होता।
परिणाम विचार ना हो जिसमें तामस कर्म वो होता।। 25।।

भौतिक गुण व गर्व रहित जो कर्म संकल्प से करता है।
सात्विक कर्त्ता वो विचलित नहीं हार–जीत से होता है।। 26।।

लोभी जो कष्ट दूसरों को दे कर्मफल में आसक्ति धरता।
हर्षशोक में लिप्त अशुद्धचारी वो कहाए राजस कर्त्ता।। 27।।

अनपढ़, घमण्डी, धूर्त, अयुक्त जो कार्य को कल पर टाले।
तामस कर्त्ता वो होते आलसी दूसरों का नाश करने वाले।। 28।।

अर्जुन सुन बुद्धि व धृति को, उनके गुण अनुसार।
सम्पूर्ण व विभागपूर्वक बताऊँ भेदों के तीन प्रकार।। 29।।

जो कर्म अकर्म भय अभय, बन्धन व मोक्ष को जानती है।
हे अर्जुन वह बुद्धि ही सात्विक बुद्धि कहाती है।। 30।।

जो बुद्धि धर्म अधर्म कर्त्तव्य अकर्त्तव्य को ना जाने।
ऐसी बुद्धि को हे पार्थ राजस बुद्धि जग माने।। 31।।

अधर्म को धर्म मानती जो तमो गुणों से ढकी रहती।
सदा चले जो उलटी दिशा में बुद्धि तामस वही होती।। 32।।

प्राण मन इन्द्रिय क्रियाऐं जब ध्यान योग से धारण की जाती।
ऐसी अव्यमि चारिणी धृति, सात्विक धृति है कहलाती।। 33।।

जिस धृति से फल चाहने वाले, धर्मार्थ काम करते हैं।
उस धारणा शक्ति को ही राजस धृति कहते हैं।। 34।।

जिस धृति से निन्द्रा भय चिन्ता दुःखों को दुष्ट ना छोड़ें।
शास्त्र उस धृति को ही तामस धारणाशक्ति बोले।। 35।।

सुख के अब तीन भेद बताऊँ जीव भाग करें जिसके कारण।
दुःख सब अपने मिटा लेते हैं, जिसको भी करके धारण।।36।।

शुरू में विष के तुल्य लगे, पर अमृत है परिणाम।
परमात्विषय बुद्धि प्रसाद इस सुख को सात्विक मान।। 37।।

जो सुख विषय इन्द्रियों से मिलता अमृत तुल्य वो लगता।
हो परिणाम में वह विष सम, राजस सुख वो होता।। 38।।

भोगकाल और परिणाम भी , मोहित करे आत्मा को।
निन्द्रा–आलस प्रसाद से प्रगटे, तामस सुख कहते उसको।। 39।।

प्रकृति के तीन गुणों का सभी में होता वास।
इनसे रहित कोई सत्व नहीं, देव, पृथ्वी आकाश।। 40।।

बृाह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, शूद्रों को कर्म से विभक्त करते।
कर्म स्वभाव से उत्पन्न गुणों के द्वारा पृथक हैं करते।। 41।।

ज्ञान, विज्ञान, तप, सत्यनिष्ठ, शान्तिप्रिय, पवित्र होते।
वेद शास्त्रों में श्रद्धा रखते कर्म ये बृाह्मण के होते।। 42।।

शूरवीरता, तेज, धैर्य, दान देना और स्वभाव।
युद्ध लड़ाई आदि सब ये हैं क्षत्रिय कर्म प्रभाव।। 43।।

वैश्य और स्वभाविक कर्म, गौ रक्षा खेती व्यापार।
सब वर्णों की करना सेवा, शूद्र का है कर्म व्यवहार।। 44।।

अपने कर्म का करके पालन, मनुष्य सिद्ध हो जाता।
अब मैं बताऊँ विधि वो जिससे प्राणी सिद्धि को पाता।। 45।।

प्राणी उत्पन्न जिस ईश्वर से , जिससे जगत है व्याप्त।
उसको स्वभाविक कर्मों से पूज सिद्धि को होता प्राप्त।। 46।।

दूसरे कर्म से गुण रहित भी धर्म श्रेष्ठ अपना होता।
स्वधर्म रूप में नियत कर्म कर, कोई पापी नहीं होता।। 47।।

दोषयुक्त होने पर भी नहीं सहज कर्म करे त्याग।
दोषयुक्त हर कर्म है ज्यों धुँए से आग।। 48।।

आसक्ति रहित बुद्धि वाला जो अन्तकरण को जीत जाता।
सांख्ययोग के ही द्वारा वो योगी उच्च सिद्धि को है पाता।। 49।।

नैष्कर्म्य सिद्धि को पाके मनुष्य बृह्म को ही पा जाता।
परानिष्ठा है जो ज्ञानयोग की अर्जुन तुझको समझाता।। 50।।

विशुद्ध बुद्धि से युक्त जो सात्विक भोजन है करता।
विषयों का कर त्याग जो एकान्त स्थान में है रहता।। 51।।

अन्तःकरण और इन्द्रियों पे सात्विक धृति से संयम रखे।
तन मन वाणी को करके वश राग द्वेष को नष्ट करे।। 52।।

अंहकार मद काम क्रोध परिग्रह का जो त्याग करे।
ध्यानयोग रत शान्तियुक्त वह जन बृह्म को प्राप्त करे।। 53।।

बृह्म स्थित समभाव योगी, शोक आकांक्षा जो ना करता।
समस्त प्राणियों को सम देखे, मेरी शक्ति है प्राप्त करता।। 54।।

मुझ परमात्मा को जो भक्ति से यथावत तत्व से जानता है।
मनुष्य वो तत्काल ही मुझमें फिर प्रिविष्ट हो जाता है।। 55।।

सभी कर्मों को करते हुए, मेरे परायण जो होता।
मेरी कृपा से अविनाशी परम पद उसको प्राप्त होता।। 56।।

सर्वस्व कर्म करके अर्पण, समबुद्धि योग अवलम्बन कर।
मेरे परायण हो जा , रह मेरे ही ध्यान में तू तत्पर।। 57।।

मुझमें चित्तवाला होकर तू, संकट पार करेगा सारे।
अंहकार वश माने ना तो होगे नष्ट परमार्थ सारे।। 58।।

मैं नहीं युद्ध करूँगा, यदि तू अंहकारवश सोचेगा।
निश्चय तेरा ये झूठा है , स्वभाव से युद्ध में तू होगा।। 59।।

जिस कर्म को तू ना करना चाहे, करके मोह को धारण।
परवश होके करेगा तू उसे पूर्वकृत अपने कर्म कारण।। 60।।

शरीर रूप यन्त्र में आरूढ़ ,समस्त जीव हृदयों के अन्दर।
कर्मानुसार है भ्रमण कराता अन्तर्यामी वो परमेश्वर।। 61।।

हे अर्जुन तू सब प्रकार से परमेश्वर की शरण में जा।
उसकी कृपा से शान्ति को व परमधाम को तू पा जा।। 62।।

अति गोपनीय ज्ञान हे अर्जुन मैंने तुझे सुनाया है।
भलीभांति यह ज्ञान विचारके, कर जो तेरे मन आया है।। 63।।

गोपनीय से अति गोपनीय वचन मैं अर्जुन फिर कहता।
परम प्रिय है तू मेरा इसलिए हितकारक वचन कहता।। 64।।

मेरा भक्त बन पूजन कर , कर तू मुझे प्रणाम।
तू मेरा प्रिय है प्राप्त होगा मुझे सत्य मान प्रमाण।। 65।।

शरण आ मुझ परमेश्वर की, समस्त कर्मों को त्याग।
पाप मुक्त कर दूँगा तुझे, मैं मत कर शोक वैराग।। 66।।

गीता का ये रहस्योपदेश, तप भक्ति रहित को ना सुनाना।
मुझसे दोष दृष्टि रखता हो जो उसको भी कभी नही बताना। 67।

पुरूष जो मुझमें प्रेमरत होके, गीताशास्त्र सुनाऐगा।
भक्तों का होगा उद्धार, फिर मेरा धाम वो पायेगा।। 68।।

उससे बढ़के मेरा प्रिय कोई भी प्राणी नहीं होगा।
पृथ्वी पर उससे बढ़के कोई मुझको प्यारा नहीं होगा।। 69।।

जो पुरूष इस धर्ममय , गीता शास्त्र को पढ़ेगा।
ज्ञान यज्ञ से पूजित होऊँगा, मुझको वो प्राप्त करेगा।। 70।।

श्रद्धायुक्त और दोषदृष्टि रहित जो गीता का है श्रवण करे।
पाप मुक्त होगा वह प्राणी, श्रेष्ठ लोको को प्राप्त करे।। 71।।

हे पार्थ क्या इस शास्त्र को , चित्त से तूने श्रवण किया।
अज्ञान जनित मोह अर्जुन क्या तेरा नष्ट वो हो गया।। 72।।

कहे अर्जुन माधव आपकी कृपा से मोह नष्ट हो गया सभी।
समृति प्राप्त मैं , संशयरहित जो आज्ञा दोगे करूँ अभी।। 73।।

संजय बोले इस प्रकार श्री कृष्ण और अर्जुन के ।
अद्‌भुत रहस्य युक्त रोमांचक कहे संवाद मैंने सुनके।। 74।।

व्यास जी कृपा से इस दिव्य दृष्टि को पाकर।
सुना गोपनीय ज्ञान जिसे अर्जुन को सुनाए योगेश्वर।। 75।।

रहस्य युक्त कृष्णार्जुन के संवादों को पुनः यादकर।
हे राजन! मैं बार–बार हर्षित होता हूँ मन में अपर।। 76।।

हे राजन! हरि के विलक्षण रूप को पुनः याद कर।
चित्त आश्चर्य चकित है और मैं हर्षित हूँ अब अति अपर।। 77।।

हे राजन जहाँ श्रीकृष्ण और अर्जुन हैं गाण्डीवधारी।
वहीं श्री, विजय, नीति, विभूति हैं सोच हैं ये हमारी।। 78।।

।। अध्याय अट्ठारह सम्पूर्ण।।

।। श्रीमद् भगवद् गीता सम्पूर्ण।।